NIRVAN DHAM

Nirvan Sutra Mini Ebook Series

मैं कौन हूँ

आत्म-अन्वेषण की सरल यात्रा

Aadisatv

NIRVAN DHAM

मैं कौन हूँ

साधक ही भ्रम है

Nirvan Sutra • Book 1

खोज, जागरण और स्वयं की सरल पहचान

Aadisatv

आदिसत्व

प्रकाशन-नोट

Nirvan Sutra Book 1: मैं कौन हूँ - साधक ही भ्रम है

लेखक: आदिसत्व (Aadisatv)

प्रस्तुति: Nirvan Dham

यह पुस्तक आत्म-अन्वेषण, साक्षीभाव और अद्वैत की सरल समझ के लिए लिखी गई है। इसे धीरे-धीरे पढ़ें। किसी वाक्य पर रुकना, आँखें बंद करना, और भीतर देखना भी इस पुस्तक का हिस्सा है।

यह कोई धार्मिक दावा, चिकित्सा-उपचार, या व्यक्तिगत जीवन-निर्णयों का विकल्प नहीं है। यह केवल भीतर देखने का निमंत्रण है।

विषय-सूची

लेखक-नोट	मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी
अध्याय १	पहली भूल — “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा”
अध्याय २	साधक: विचारों से बनी एक पहचान
अध्याय ३	जागरण उपलब्धि क्यों नहीं हो सकता
अध्याय ४	आध्यात्मिक अनुभवों का जाल
अध्याय ५	गुरु, विधि और छिपी हुई निर्भरता
अध्याय ६	खोज: एक सूक्ष्म पलायन
अध्याय ७	जब खोज शांत होने लगती है
अध्याय ८	साधक को कौन जान रहा है?
अध्याय ९	कोई अंतिम विस्फोट नहीं, केवल सरल पहचान
अध्याय १०	बनने के बोझ के बिना जीना
समापन-संदेश	अंतिम मौन-स्पर्श

लेखक-नोट

मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी

✦

यह पुस्तक मैंने किसी नए मार्ग की घोषणा करने के लिए नहीं लिखी है। संसार में मार्ग बहुत हैं। विधियाँ बहुत हैं। आश्रम, शास्त्र, गुरु, साधनाएँ, ध्यान की तकनीकें, मौन के अभ्यास — सब अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हो सकते हैं। लेकिन फिर भी मैंने देखा है कि मनुष्य बहुत वर्षों तक खोजता रहता है, और अंत में थककर वही प्रश्न लेकर बैठा रहता है — “मैं अभी तक पहुँचा क्यों नहीं?”

यहीं से इस पुस्तक का जन्म हुआ।

मेरे सामने बार-बार ऐसे साधक आते हैं जिन्होंने बहुत पढ़ा है, बहुत सुना है, बहुत अभ्यास किया है। वे सचमुच ईमानदार हैं। उनके भीतर कोई साधारण जिज्ञासा नहीं, एक गहरी प्यास है। वे जीवन के दुख से भागना नहीं चाहते; वे सच को जानना चाहते हैं। लेकिन फिर भी उनके भीतर एक अदृश्य बोझ रहता है — “मुझमें कुछ कमी है। मुझे कुछ बनना है। मुझे कहीं पहुँचना है। अभी मैं वहाँ नहीं हूँ।”

यह “मैं अभी वहाँ नहीं हूँ” ही सबसे पहला भ्रम है।

और यह भ्रम इतना सूक्ष्म है कि आध्यात्मिकता भी इसे छिपा सकती है। पहले मनुष्य संसार में कुछ बनने की कोशिश करता है — सफल, प्रसिद्ध, सुरक्षित, प्रिय, सम्मानित। फिर जब संसार से थकता है तो वही बनने की भूख आध्यात्मिक रूप ले लेती है — अब मुझे जागृत होना है, मुक्त होना है, प्रकाशित होना है, निर्वाण पाना है।

शब्द बदल जाते हैं, लेकिन भीतर की गति वही रहती है।

मन फिर भी भविष्य की ओर भाग रहा है।

मन फिर भी कह रहा है — अभी नहीं, बाद में। यहाँ नहीं, कहीं और। मैं नहीं, कोई और अवस्था।

यह पुस्तक इसी सूक्ष्म गति को देखने का निमंत्रण है।

मैं चाहता हूँ कि साधक पहली बार बहुत शांत होकर यह देखे कि जिसे वह खोज रहा है, कहीं वही खोज उसे सत्य से दूर तो नहीं ले जा रही? कहीं ऐसा तो नहीं कि सत्य दूर नहीं है, लेकिन खोजने वाला मन ही दूरी बना रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं कि जिसे हम “मेरी आध्यात्मिक यात्रा” कहते हैं, वह भी मन की एक सुंदर कहानी हो?

यह बात मन को चोट पहुँचा सकती है, क्योंकि मन ने अपनी पूरी पहचान खोज पर बना रखी है। साधक होना भी एक पहचान बन जाता है। पहले हम कहते थे, “मैं दुखी हूँ।” फिर हम कहते हैं, “मैं साधक हूँ।” फिर कहते हैं, “मैं जागरण के निकट हूँ।” पर इन सब वाक्यों के केंद्र में एक ही “मैं” बैठा रहता है — जो स्वयं को अधूरा मानता है।

मैं इस “मैं” के विरुद्ध नहीं हूँ।

मैं इसे मिटाने की हिंसक कोशिश भी नहीं सिखाता।

मैं केवल इसे प्रकाश में लाना चाहता हूँ।

जैसे कमरे में अंधेरा वर्षों से हो, और कोई आदमी अंधेरे से लड़ता रहे — डंडे से, मंत्र से, प्रार्थना से, तर्क से। लेकिन अंधेरा लड़ने से नहीं जाता। एक छोटा-सा दीपक जलता है, और अंधेरा बिना संघर्ष के चला जाता है। उसी तरह खोजी “मैं” को न दबाना है, न मारना है, न पवित्र बनाना है। उसे बस देखना है।

देखना ही यहाँ कुंजी है।

जब तुम शांत होकर देखते हो कि “मुझे मुक्त होना है” यह भी एक विचार है, तो कुछ नरम पड़ता है। जब तुम देखते हो कि “मैं अभी अधूरा हूँ” यह भी मन की ध्वनि है, तो भीतर कोई गहरी जगह खुलती है। उस जगह में कोई जल्दी नहीं होती। वहाँ कोई उपलब्धि नहीं चाहिए।

वहाँ बैठते ही धीरे-धीरे समझ आता है कि आकाश को आकाश बनने के लिए यात्रा नहीं करनी पड़ती।

बादल आते हैं, जाते हैं।

आकाश वहीं रहता है।

विचार आते हैं, जाते हैं।

भावनाएँ उठती हैं, गिरती हैं।

शरीर बदलता है।

जीवन की परिस्थितियाँ बदलती हैं।

लेकिन वह जागरूकता, जिसमें यह सब दिख रहा है, वह कहाँ जाती है?

इस पुस्तक का उद्देश्य तुम्हें किसी अनुभव तक पहुँचाना नहीं है। अनुभव आते हैं और चले जाते हैं। सुखद अनुभव भी जाते हैं। गहरी शांति भी कभी-कभी छिप जाती है। ध्यान में मिला प्रकाश भी बदल सकता है। लेकिन जो इन सबको जान रहा है, क्या वह भी बदलता है?

मैं चाहता हूँ कि तुम इसी सरल प्रश्न के साथ बैठो।

इस पुस्तक को पढ़ते समय जल्दी मत करना। इसे विचारों की पुस्तक की तरह मत पढ़ना। इसे ऐसे पढ़ना जैसे कोई शांत नदी तुम्हारे भीतर बह रही हो। किसी वाक्य पर रुक जाना। आँखें बंद कर लेना। देखना कि यह बात तुम्हारे अनुभव में सच है या नहीं। मानना मत। लड़ना भी मत। केवल देखना।

मेरी दृष्टि में सच्ची शिक्षा वह नहीं जो तुम्हें नया बोझ दे। सच्ची शिक्षा वह है जो तुम्हारे बोझ को हल्का कर दे। जो तुम्हें यह न कहे कि “तुम्हें बहुत दूर जाना है”, बल्कि धीरे से याद दिलाए — “जिसे तुम खोज रहे हो, वह अभी तुम्हारे देखने में ही छिपा है।”

तुम्हें नया व्यक्ति नहीं बनना है।

तुम्हें किसी विशेष रूप में चमकना नहीं है।

तुम्हें अपने भीतर कोई असाधारण प्रमाण नहीं जुटाना है।

सिर्फ यह देखना है कि जो स्वयं को अधूरा कह रहा है, वह कौन है? जो कह रहा है “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा”, क्या वह स्वयं कोई ठोस सत्य है, या केवल विचारों का बना हुआ एक केंद्र है?

यदि यह केंद्र देखा गया, तो उसकी पकड़ ढीली पड़ने लगती है।

और जब पकड़ ढीली पड़ती है, तब जीवन पहली बार हल्का लगता है। खोज समाप्त होने का अर्थ जीवन समाप्त होना नहीं है। खोज समाप्त होने का अर्थ है — अब जीवन को भविष्य की छाया से नहीं देखा जाएगा। अब साधना भी बोझ नहीं होगी। मौन भी उपलब्धि नहीं होगा। प्रेम भी पकड़ नहीं होगा। दुख भी दुश्मन नहीं होगा।

सब कुछ उसी जागरूकता में उठेगा और विश्राम करेगा।

मैंने यह पुस्तक इसलिए लिखी है कि तुम थककर हारो नहीं, बल्कि शांत होकर देखो। तुम्हारी थकान भी एक द्वार हो सकती है। जिस दिन साधक सचमुच रुकता है, उसी दिन पहली बार वह उस मौन को सुन सकता है जो हमेशा से उपस्थित था।

तुम कहीं पहुँचोगे नहीं।

बस यह भ्रम गिर सकता है कि तुम कभी दूर थे।

अध्याय १

पहली भूल — “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा”

✦

मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा प्रायः एक बहुत साधारण, लेकिन बहुत गहरे विश्वास से शुरू होती है — “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा हूँ।”

यह वाक्य दिखने में विनम्र लगता है। इसमें खोज भी है, प्यास भी है, ईमानदारी भी है। लेकिन यदि इसे बहुत शांत होकर देखा जाए, तो यही वाक्य भीतर एक दूरी पैदा कर देता है। यह कहता है कि सत्य कहीं आगे है। शांति किसी आने वाले दिन में है। मुक्ति किसी विशेष अनुभव के बाद मिलेगी। और अभी जो मैं हूँ, वह पर्याप्त नहीं है।

यहीं से साधक जन्म लेता है।

साधक का जन्म सत्य से नहीं होता।

साधक का जन्म कमी की भावना से होता है।

यह सुनकर मन थोड़ा असहज हो सकता है, क्योंकि साधक होना पवित्र लगता है। पर यहाँ किसी की निंदा नहीं हो रही। यह केवल एक सूक्ष्म दर्शन है। जब भीतर यह विश्वास उठता है कि “मैं अभी अधूरा हूँ”, तब मन किसी पूर्णता की तलाश शुरू करता है। संसार में वह पूर्णता धन, संबंध, सम्मान, सुरक्षा या उपलब्धि के रूप में खोजी जाती है। आध्यात्मिक जीवन में वही पूर्णता मुक्ति, समाधि, निर्वाण या जागरण के रूप में खोजी जाती है।

नाम बदल जाते हैं।

दिशा बदल जाती है।

लेकिन भीतर की कमी की अनुभूति वैसी ही रहती है।

अधूरापन: मन की पहली छाया

कभी बहुत शांत बैठकर देखना — क्या वास्तव में तुम्हारे भीतर कोई अधूरापन है, या केवल अधूरेपन का विचार है?

शरीर को भोजन चाहिए, विश्राम चाहिए, सुरक्षा चाहिए। मन को सीखना पड़ता है, भाषा सीखनी पड़ती है, काम करना पड़ता है। जीवन के स्तर पर बहुत कुछ अधूरा हो सकता है। घर अधूरा हो सकता है। संबंध उलझे हो सकते हैं। धन कम हो सकता है। स्वास्थ्य कमजोर हो सकता है। ये सब जीवन की परिस्थितियाँ हैं।

लेकिन क्या जागरूकता अधूरी है?

जो इन सबको जान रही है — क्या वह टूटी हुई है?

जब तुम कहते हो, “मेरा जीवन अभी ठीक नहीं है,” तो कोई है जो इस बात को जान रहा है। जब तुम कहते हो, “मेरा मन बेचैन है,” तो कोई है जो बेचैनी को देख रहा है। जब तुम कहते हो, “मैं साधना में आगे नहीं बढ़ रहा,” तो कोई है जो इस विचार को भी जान रहा है।

उस जानने वाले में क्या कमी है?

यह प्रश्न उत्तर पाने के लिए नहीं है। यह प्रश्न मन को शांत करने के लिए है, ताकि तुम एक पल के लिए उस जगह की ओर लौटो जहाँ से सब कुछ देखा जा रहा है।

साधारणत: हम देखी हुई चीज़ों में उलझ जाते हैं। विचार दिखता है, हम कहते हैं — मैं विचार हूँ। भावना उठती है, हम कहते हैं — मैं दुखी हूँ। शरीर थकता है, हम कहते हैं — मैं टूट गया हूँ। साधना में शांति नहीं मिलती, हम कहते हैं — मैं पीछे हूँ।

पर जो यह सब देख रहा है, वह पीछे कैसे हो सकता है?

पीछे और आगे समय की भाषा है।

जागरूकता समय में चलने वाली वस्तु नहीं है।

भविष्य की ओर भागता हुआ मन

मन की एक पुरानी आदत है — वह वर्तमान को कभी पूरा नहीं मानता। वह कहता है, अभी कुछ कमी है। थोड़ी और समझ आ जाए, फिर शांति मिलेगी। थोड़ा और ध्यान हो जाए, फिर स्थिरता मिलेगी। कोई बड़ा अनुभव हो जाए, फिर भरोसा होगा। किसी गुरु से अंतिम संकेत मिल जाए, फिर बात बनेगी।

मन हमेशा “फिर” में जीता है।

और “फिर” कभी आता नहीं।

जब वह दिन आता है जिसकी प्रतीक्षा थी, मन उसके आगे एक और दिन रख देता है। एक अनुभव मिला, तो कहता है — यह अच्छा था, पर स्थायी नहीं था। एक शांति मिली, तो कहता है — अब इसे हमेशा बनाए रखना है। एक झलक मिली, तो कहता है — अब पूर्ण जागरण चाहिए।

मन की भूख बहुत सूक्ष्म है।

वह संसार में भी भविष्य बनाता है, और अध्यात्म में भी।

लेकिन सत्य भविष्य में नहीं मिल सकता, क्योंकि भविष्य केवल विचार है। भविष्य अभी तुम्हारे अनुभव में कहाँ है? वह एक कल्पना है। एक मानसिक चित्र है। एक संभावना है। सत्य यदि है, तो अभी ही हो सकता है। जो अभी नहीं है, वह सत्य कैसे होगा? जो आने-जाने वाला है, वह तुम्हारा स्वभाव कैसे होगा?

जैसे समुद्र अपनी लहरों से कहे — “एक दिन तुम समुद्र बनोगी।” यह बात सुनने में अजीब लगेगी, क्योंकि लहर पहले से ही समुद्र है। उसका आकार बदल सकता है, ऊँचाई बदल सकती है, गति बदल सकती है, पर उसका जल समुद्र से अलग नहीं है।

इसी तरह साधक कहता है — “एक दिन मैं चेतना को पाऊँगा।”

पर यह कहने वाला विचार भी चेतना में ही उठ रहा है।

तुम चेतना से बाहर जाकर चेतना को कैसे पाओगे?

दूरी का भ्रम

“मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा” — इस वाक्य में दो बातें छिपी हैं। एक “मैं” है, और एक “वहाँ” है। मन पहले स्वयं को एक अलग व्यक्ति मानता है, फिर सत्य को कहीं दूर रख देता है। अब यात्रा शुरू हो जाती है।

लेकिन क्या यह दूरी वास्तविक है?

जब तुम शांति खोजते हो, तो शांति किसे चाहिए? मन को। क्योंकि मन अस्थिर है। लेकिन क्या जागरूकता अस्थिर है? अस्थिरता उसमें दिख रही है। विचारों की हलचल उसमें उठ रही है। भावनाओं की लहरें उसमें चल रही हैं। पर देखने की वह निःशब्द जगह स्वयं हिलती नहीं।

आकाश में बादल दौड़ते हैं। तूफान आते हैं। बिजली चमकती है। बारिश गिरती है। पर आकाश कहीं नहीं भागता। आकाश तूफान को रोकता नहीं, पकड़ता नहीं, उससे लड़ता नहीं। वह बस खुला रहता है। तूफान आता है और उसी में चला जाता है।

तुम्हारी जागरूकता भी ऐसी ही है।

मन बादल है।

तुम आकाश हो।

लेकिन भूल यह है कि आकाश स्वयं को बादल मान बैठा है। फिर जब बादल काले होते हैं, आकाश कहता है — मैं अंधेरा हूँ। जब बादल हल्के होते हैं, आकाश कहता है — मैं शांत हूँ। जब बादल छँटते हैं, आकाश कहता है — आज मैं अच्छा हूँ।

आकाश बादलों के अनुसार स्वयं को मापने लगे, तो दुख जन्म लेता है।

साधक की पहली भूल यही है — वह अपने भीतर उठने वाली अवस्था के आधार पर अपनी सत्यता को मापता है।

आज ध्यान अच्छा हुआ, तो लगता है — मैं आगे बढ़ रहा हूँ।

कल मन बेचैन हुआ, तो लगता है — मैं गिर गया।

एक दिन प्रेम उमड़ा, तो लगता है — मैं खुल रहा हूँ।

दूसरे दिन क्रोध आया, तो लगता है — मैं अभी बहुत दूर हूँ।

लेकिन जो इन सभी अवस्थाओं को देख रहा है, क्या वह आगे-पीछे हो रहा है?

आध्यात्मिक मापदंड की कैद

दुनिया में मनुष्य स्वयं को दूसरों से मापता है। किसके पास अधिक धन है, किसका घर बड़ा है, किसका नाम अधिक है, किसे अधिक सम्मान मिला। आध्यात्मिक जीवन में भी मन बहुत सूक्ष्म रूप से यही खेल जारी रखता है।

कौन अधिक शांत है?

किसे अधिक अनुभव हुए?

कौन अधिक देर ध्यान में बैठ सकता है?

किसकी वाणी अधिक गहरी है?

किसे गुरु ने अधिक निकट माना?

किसने क्या देखा, क्या पाया, क्या छोड़ा?

ये सब प्रश्न बाहर से आध्यात्मिक दिख सकते हैं, लेकिन भीतर तुलना की वही पुरानी आग जलती रहती है। तुलना का अर्थ है — मैंने स्वयं को वस्तु मान लिया है। जैसे कोई चीज़ दूसरी चीज़ से बड़ी या छोटी हो सकती है, वैसे ही मैं भी किसी से आगे या पीछे हो सकता हूँ।

पर जागरूकता की तुलना किससे होगी?

क्या एक आकाश दूसरे आकाश से बड़ा है?

क्या मौन स्वयं को किसी दूसरे मौन से मापता है?

तुम्हारा मन किसी से अधिक उलझा हो सकता है। तुम्हारी भावनाएँ किसी से अधिक तीव्र हो सकती हैं। तुम्हारा जीवन किसी से अधिक कठिन हो सकता है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो जानने की क्षमता है, वह किसी तुलना में नहीं आती।

इसीलिए सत्य में प्रवेश तुलना से नहीं, विश्राम से होता है।

अभी की अस्वीकृति

“मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा” का अर्थ है — अभी जो है, वह पर्याप्त नहीं है।

यह बात साधना में सबसे गहरी बेचैनी पैदा करती है। साधक वर्तमान क्षण को केवल साधन बना देता है। वह इस क्षण में नहीं होता; वह इस क्षण का उपयोग किसी आने वाले क्षण तक पहुँचने के लिए करता है।

ध्यान भी साधन बन जाता है।

मौन भी साधन बन जाता है।

सत्संग भी साधन बन जाता है।

श्वास भी साधन बन जाती है।

और जब सब कुछ साधन बन जाता है, तब जीवन कभी स्वयं में पूर्ण दिखाई नहीं देता।

एक फूल खिला है। मन कहता है — इससे मुझे ध्यान की याद आनी चाहिए। एक पक्षी गा रहा है। मन कहता है — इससे मुझे उपस्थिति में आना चाहिए। श्वास चल रही है। मन कहता है — मुझे इसका अभ्यास करना चाहिए।

मन हर चीज़ को परियोजना बना देता है।

पर कभी ऐसा भी बैठो कि श्वास को साधन न बनाओ। उसे आने-जाने दो। पक्षी को शिक्षा मत बनाओ। उसे गाने दो। फूल को प्रतीक मत बनाओ। उसे खिलने दो। इसी अनुमति में एक गहरा रहस्य है।

जब तुम जीवन को सुधारने की जल्दी छोड़ते हो, जीवन स्वयं प्रकट होने लगता है।

जब तुम वर्तमान को सीढ़ी बनाना बंद करते हो, वर्तमान द्वार बन जाता है।

क्या कुछ करना नहीं है?

यह प्रश्न स्वाभाविक है। यदि मैं पहले से वही हूँ जिसे खोज रहा हूँ, तो क्या साधना व्यर्थ है? क्या ध्यान छोड़ देना चाहिए? क्या गुरु, शास्त्र, अभ्यास सब बेकार हैं?

नहीं।

यह समझना बहुत आवश्यक है।

साधना व्यर्थ नहीं है। लेकिन साधना का अर्थ स्वयं को पूर्ण बनाना नहीं है। साधना का अर्थ है — उस भ्रम को देखना जिसके कारण पूर्णता छिपी हुई लगती है।

ध्यान तुम्हें जागरूकता नहीं देता। ध्यान तुम्हें यह देखने में सहायक हो सकता है कि तुम पहले से जागरूक हो।

गुरु तुम्हें सत्य नहीं देता। गुरु तुम्हें उस दिशा में देखने को कहता है जहाँ तुम हमेशा से खड़े हो।

शास्त्र तुम्हारे भीतर कुछ नया नहीं भरते। वे तुम्हारी दृष्टि को भीतर मोड़ते हैं।

इसलिए करना समस्या नहीं है।

कर्ता की गलत पहचान समस्या है।

जब साधना कमी से होती है, तो वह बेचैनी बनती है।

जब साधना प्रेम से होती है, तो वह विश्राम बनती है।

जब ध्यान उपलब्धि के लिए होता है, तो मन और सूक्ष्म हो जाता है।

जब ध्यान देखने के लिए होता है, तो मन की पकड़ ढीली पड़ती है।

सबसे सरल देखना

अभी, इसी क्षण, बहुत धीरे से देखो।

तुम्हारे भीतर कौन-सा विचार चल रहा है?

शायद यह — क्या मैं समझ रहा हूँ? क्या यह सच है? क्या मेरे साथ भी ऐसा है? क्या मैं कभी जागूँगा?

इन विचारों को रोकना मत।

बस देखो।

जो इन्हें देख रहा है, क्या वह कोई विचार है?

यदि एक और विचार उठता है — "मैं देख रहा हूँ" — तो उसे भी देखो।

यदि कोई शांति उठती है — उसे भी देखो।

यदि कोई बेचैनी उठती है — उसे भी देखो।

धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगता है कि अनुभव बदल रहे हैं, पर देखने की उपस्थिति यहीं है। उसे लाना नहीं पड़ा। उसे बनाना नहीं पड़ा। वह पहले से थी।

यही पहली दरार है भ्रम में।

साधक सोचता था कि उसे पहुँचना है।

अब दिखता है — देखने वाला कभी चला ही नहीं था।

यात्रा का नया अर्थ

जब यह समझ गहराती है, तब आध्यात्मिक यात्रा समाप्त नहीं होती; उसका अर्थ बदल जाता है। अब यात्रा किसी दूर मंज़िल की ओर नहीं रहती। अब हर कदम में वही सत्य झलकने लगता है।

तुम चलते हो — जागरूकता है।

तुम खाते हो — जागरूकता है।

तुम रोते हो — जागरूकता है।

तुम हँसते हो — जागरूकता है।

तुम भ्रमित हो — उस भ्रम का भी ज्ञान है।

तुम स्पष्ट हो — उस स्पष्टता का भी ज्ञान है।

जागरूकता किसी अवस्था की प्रतीक्षा नहीं करती। वह बेचैनी में भी उतनी ही उपस्थित है जितनी शांति में। अंतर केवल इतना है कि बेचैनी में मन उसे भूल जाता है, और शांति में उसका संकेत मिल जाता है।

पर वह दोनों में है।

यही जानना धीरे-धीरे खोज को नरम करता है। भीतर की दौड़ धीमी पड़ती है। साधक पहली बार अपने ही भीतर बैठना सीखता है। वह खुद को सुधारने की हिंसा से मुक्त होने लगता है। वह जीवन को दुश्मन की तरह नहीं देखता। वह मन को भी शत्रु नहीं मानता। वह बस देखता है — मन अपनी पुरानी आदत से भविष्य बना रहा है।

और इस देखने में एक कोमल मुस्कान आ सकती है।

कितना सरल था, और मन ने इसे कितना कठिन बना दिया।

पहली भूल का अंत

पहली भूल यह थी कि तुमने स्वयं को अपूर्ण मान लिया।

दूसरी भूल यह थी कि तुमने पूर्णता को भविष्य में रख दिया।

तीसरी भूल यह थी कि तुमने उस भविष्य तक पहुँचने वाले “साधक” को वास्तविक मान लिया।

अब इन भूलों को दोष मत बनाओ। इन्हें बस देखो। मन ने जो किया, अपनी प्रकृति से किया। वह समय में जीता है, इसलिए उसने सत्य को भी समय में खोजा। वह पाने की भाषा समझता है, इसलिए उसने मुक्ति को भी पाने की वस्तु बना दिया।

लेकिन अब एक शांत संभावना खुल रही है।

क्या होगा यदि तुम एक क्षण के लिए यह मानना छोड़ दो कि तुम दूर हो?

क्या होगा यदि तुम अभी इस बात को महसूस करो कि जागरूकता को तुम्हारी यात्रा की प्रतीक्षा नहीं?

क्या होगा यदि शांति कोई भविष्य की वस्तु नहीं, बल्कि इसी क्षण के केंद्र में छिपा हुआ मौन है?

इसका अर्थ यह नहीं कि मन हमेशा शांत हो जाएगा।

इसका अर्थ यह है कि मन की अशांति तुम्हारी सत्यता नहीं रहेगी।

बादल आएँगे।

आकाश फिर भी आकाश रहेगा।

लहरें उठेंगी।

समुद्र फिर भी समुद्र रहेगा।

विचार कहेगा — “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा।”

और जागरूकता शांत रहेगी।

वह जानती है — कोई दूरी नहीं थी।

केवल विचार की एक रेखा थी, जिसे तुमने मार्ग समझ लिया था।

अब उस रेखा को देखो।

और थोड़ा विश्राम करो।

यात्रा वहीं नरम पड़ती है जहाँ देखना शुरू होता है।

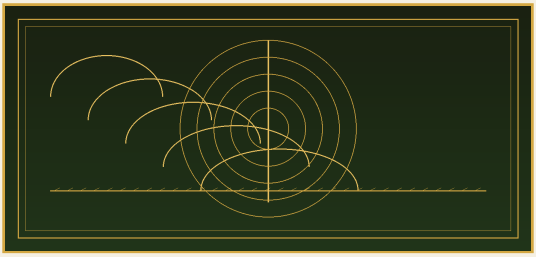

चित्र: आकाश और बादल — देखने वाला मौन आकाश है।

अध्याय २

साधक: विचारों से बनी एक पहचान

✦

पहले अध्याय में हमने देखा कि साधक की पहली भूल यह है — “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा।”

अब थोड़ा और भीतर चलते हैं।

यह जो कहता है, “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा,” यह कौन है?

क्या यह कोई वास्तविक सत्ता है?

क्या यह तुम्हारे भीतर बैठा हुआ कोई ठोस व्यक्ति है?

या यह केवल विचारों, स्मृतियों, इच्छाओं, डर और कल्पनाओं से बनी हुई एक मानसिक पहचान है?

यह प्रश्न बहुत सूक्ष्म है। इसे जल्दी से समझ लेना पर्याप्त नहीं। इसे भीतर उतरने देना होता है। जैसे कोई बीज धीरे-धीरे मिट्टी में खुलता है, वैसे ही यह समझ भी धीरे-धीरे खुलती है।

साधक बाहर से बहुत सुंदर दिख सकता है। वह शांत बोलता है। वह भक्ति करता है। वह ध्यान में बैठता है। वह शास्त्र पढ़ता है। वह संसार से ऊब चुका होता है। वह सत्य के लिए रो भी सकता है। लेकिन फिर भी यदि उसके केंद्र में यह भावना है कि “मुझे कुछ बनना है,” तो साधक अभी भी मन की ही रचना है।

यह बात कठोर नहीं है।

यह केवल देखने की बात है।

साधक किससे बना है?

साधक किसी एक चीज़ से नहीं बना। वह बहुत सारी मानसिक धाराओं का संगम है।

थोड़ी स्मृति है।

थोड़ी इच्छा है।

थोड़ा डर है।

थोड़ी कल्पना है।

थोड़ा दुख है।

थोड़ी आशा है।

थोड़ा अहंकार है।

थोड़ी भक्ति भी है।

और इन सबके बीच एक विचार धीरे-धीरे आकार लेता है — “मैं साधक हूँ।”

पहले जीवन में कुछ घटनाएँ होती हैं। दुख मिलता है। संबंधों में चोट लगती है। मृत्यु दिखती है। संसार की अस्थिरता दिखाई देती है। भीतर कोई प्रश्न उठता है — “क्या जीवन बस इतना ही है?” यह प्रश्न बहुत पवित्र हो सकता है। यह प्रश्न जागरण का आरंभ भी हो सकता है।

लेकिन मन इस प्रश्न को भी पहचान बना सकता है।

वह कहता है — “मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ। मैं खोजने वाला हूँ। मैं सत्य का यात्री हूँ। मैं आध्यात्मिक हूँ।”

धीरे-धीरे यह वाक्य भीतर बैठ जाता है।

फिर जो कुछ भी होता है, वह इस पहचान के इर्द-गिर्द घूमने लगता है।

किसी ने प्रशंसा की — “आप बहुत गहरे हैं।” भीतर सुख हुआ।

किसी ने कहा — “आप अभी भी क्रोध करते हैं?” भीतर चोट लगी।

किसी ने कहा — “आपकी साधना कितनी आगे पहुँची?” भीतर तुलना जागी।

किसी ने अनुभव सुनाया — “मुझे ध्यान में प्रकाश दिखा।” भीतर चिंता उठी — “मुझे क्यों नहीं दिखा?”

देखो, साधक की पहचान कितनी सूक्ष्म है। वह संसार की चीज़ों से हट गई, लेकिन स्वयं को छोड़ नहीं पाई।

पहले पहचान थी — “मैं सफल हूँ” या “मैं असफल हूँ।”

अब पहचान हो गई — “मैं साधक हूँ” या “मैं अभी जागा नहीं हूँ।”

कपड़े बदल गए।

केंद्र वही रहा।

स्मृतियों से बना हुआ आध्यात्मिक चेहरा

साधक अपनी आध्यात्मिक स्मृतियों से भी बनता है।

किसी दिन ध्यान में गहरी शांति मिली। उस शांति की स्मृति मन ने पकड़ ली। अब वह कहता है — “वह दिन बहुत अच्छा था। मुझे फिर वैसा ही होना है।”

किसी गुरु के सामने बैठकर आँसू आए। मन ने उस क्षण को पवित्र मान लिया। अब वह उसी भाव को फिर से खोजता है।

किसी पुस्तक का वाक्य भीतर उतर गया। किसी तीर्थ में कुछ नरम हुआ। किसी भजन में हृदय खुला। ये सब सुंदर क्षण हैं। इन्हें अस्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं। जीवन में ऐसे क्षण फूल की तरह आते हैं। वे सुगंध देते हैं।

लेकिन मन सुगंध को भी बोतल में बंद करना चाहता है।

यहीं से समस्या शुरू होती है।

एक अनुभव हुआ। फिर मन ने कहा — “यह मेरी आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण है।” एक शांति मिली। फिर मन ने कहा — “अब मुझे इसी अवस्था में स्थायी रहना चाहिए।” एक मौन उतरा। फिर मन ने कहा — “मैं अब पहले जैसा नहीं रहा।”

और इसी तरह आध्यात्मिक स्मृतियों से एक नया चेहरा बनता है।

यह चेहरा संसारिक चेहरे से अधिक कोमल हो सकता है। इसमें भक्ति हो सकती है। इसमें नम्रता हो सकती है। इसमें विनम्र भाषा हो सकती है। लेकिन यदि यह चेहरा अभी भी स्मृति पर आधारित है, तो यह चेहरा भी मन का ही है।

जो स्मृति से बना है, वह तुम नहीं हो।

तुम वह हो जिसमें स्मृति आती है।

सांसारिक अहंकार और आध्यात्मिक अहंकार

सांसारिक अहंकार कहता है — “मैं बड़ा हूँ।”

आध्यात्मिक अहंकार कहता है — “मैं बहुत विनम्र हूँ।”

सांसारिक अहंकार कहता है — “मेरे पास धन है, शक्ति है, नाम है।”

आध्यात्मिक अहंकार कहता है — “मैंने सब छोड़ दिया है, मैं साधना करता हूँ, मैं गहरा हूँ।”

सांसारिक अहंकार दूसरों से आगे निकलना चाहता है।

आध्यात्मिक अहंकार दूसरों से अधिक शांत, अधिक पवित्र, अधिक जागरूक दिखना चाहता है।

बाहर से दोनों अलग लगते हैं। भीतर से दोनों की जड़ एक ही है — “मैं कुछ विशेष हूँ” या “मैं कुछ विशेष बनना चाहता हूँ।”

यहाँ सावधानी चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि भक्ति गलत है। ध्यान गलत है। अनुशासन गलत है। सरल जीवन गलत है। नहीं। ये सब बहुत सुंदर हो सकते हैं। समस्या इन चीज़ों में नहीं है। समस्या उस छिपे हुए “मैं” में है जो इन्हें अपनी पहचान बना लेता है।

जैसे कोई व्यक्ति पुराने मैले कपड़े छोड़कर सफेद वस्त्र पहन ले। वस्त्र बदल गए। लेकिन यदि भीतर वही बेचैनी, वही तुलना, वही बनने की इच्छा चल रही है, तो परिवर्तन सतह पर है।

अहंकार बहुत चतुर है।

वह संसार में भी जीवित रह सकता है।

वह आश्रम में भी जीवित रह सकता है।

वह बाजार में भी बैठ सकता है।

वह ध्यान-कक्ष में भी बैठ सकता है।

वह कह सकता है — “मैं सबसे बड़ा हूँ।”

और वह यह भी कह सकता है — “मैं तो कुछ भी नहीं हूँ।”

कई बार “मैं कुछ भी नहीं हूँ” भी अहंकार का सबसे सूक्ष्म वाक्य बन जाता है, यदि उसके पीछे कोई छिपा हुआ गर्व है।

इसलिए शब्दों से सावधान रहो।

भाव से भी सावधान रहो।

लेकिन सावधानी का अर्थ डर नहीं है। सावधानी का अर्थ है — जागना।

“मुझे ज्ञान चाहिए” — इच्छा का सूक्ष्म रूप

इच्छा केवल धन, देह, संबंध या सुख की नहीं होती। इच्छा ज्ञान की भी हो सकती है। मुक्ति की भी हो सकती है। निर्वाण की भी हो सकती है।

जब मन कहता है — “मुझे ज्ञान चाहिए,” तो बात बहुत पवित्र लगती है। लेकिन इसमें भी वही संरचना है — “मैं अभी अधूरा हूँ, और ज्ञान मुझे पूरा करेगा।”

यह इच्छा सामान्य इच्छा से अधिक सूक्ष्म है। इसलिए अधिक कठिन दिखाई देती है। संसारिक इच्छा स्पष्ट होती है। व्यक्ति जानता है कि उसे धन चाहिए, सम्मान चाहिए, प्रेम चाहिए। पर आध्यात्मिक इच्छा पवित्र वस्त्र पहन लेती है। उसे पहचानना सरल नहीं होता।

“मुझे जागरण चाहिए।”

“मुझे अंतिम मुक्ति चाहिए।”

“मुझे हमेशा के लिए शांति चाहिए।”

“मुझे अहंकार से मुक्त होना है।”

इन वाक्यों को धीरे से सुनो।

इनमें कौन बोल रहा है?

क्या जागरूकता को जागरण चाहिए?

क्या आकाश को आकाश बनने की इच्छा होती है?

क्या समुद्र को समुद्र होने का प्रमाण चाहिए?

इच्छा मन में उठती है। मन स्वभाव से अपूर्णता अनुभव करता है, इसलिए वह कुछ पाना चाहता है। जब वही मन अध्यात्म में आता है, तो वह मुक्ति को भी पाने की वस्तु बना देता है।

पर मुक्ति कोई वस्तु नहीं।

मुक्ति वह है जो तब दिखाई देती है जब पाने वाला ढीला पड़ता है।

“मुझे ज्ञान चाहिए” — यह वाक्य अंतिम सत्य के द्वार तक ला सकता है, यदि यह ईमानदार हो। लेकिन द्वार पर पहुँचकर इसे भी शांत होना होगा। क्योंकि द्वार से भीतर वह नहीं जा सकता जो कुछ लेकर जाना चाहता है।

सत्य पाने की वस्तु नहीं है।

सत्य वह प्रकाश है जिसमें पाने की इच्छा भी देखी जाती है।

भय से जन्मी खोज

साधक केवल इच्छा से नहीं बनता। वह डर से भी बनता है।

मृत्यु का डर।

जीवन व्यर्थ निकल जाने का डर।

दुख में फँसे रहने का डर।

संसार में खो जाने का डर।

अहंकार से मुक्त न हो पाने का डर।

कई साधक बाहर से कहते हैं, “मुझे सत्य चाहिए।” भीतर गहराई में कभी-कभी एक भय छिपा होता है — “यदि मुझे सत्य न मिला तो मेरा क्या होगा?”

यह भय साधना को बेचैन बना देता है।

व्यक्ति ध्यान में बैठता है, लेकिन उसके भीतर छिपा हुआ डर बैठा रहता है। वह मौन चाहता है, लेकिन मौन में भी बेचैनी रहती है। वह समर्पण चाहता है, लेकिन समर्पण भी परिणाम चाहता है। वह गुरु के चरणों में बैठता है, लेकिन भीतर पूछता है — “क्या अब मैं सुरक्षित हूँ?”

डर से जन्मी साधना अक्सर कठोर हो जाती है।

उसमें कोमलता कम होती है।

उसमें जल्दबाज़ी होती है।

उसमें तुलना होती है।

उसमें परिणाम की माँग होती है।

और जब परिणाम नहीं मिलता, तो साधक स्वयं पर क्रूर हो जाता है — “मैं योग्य नहीं हूँ। मेरी साधना ठीक नहीं। मेरा मन बहुत खराब है।”

इस तरह आध्यात्मिकता भी आत्म-आक्रमण का माध्यम बन जाती है।

मैं तुमसे कहता हूँ — स्वयं पर आक्रमण मत करो।

जो डर है, उसे भी देखो।

वह भी एक बादल है।

वह भी तुम्हारी जागरूकता में उठ रहा है।

डर को देखकर उसे दोष मत दो। वह पुराने अनुभवों से बना है। वह सुरक्षा चाहता है। वह बचना चाहता है। उसे प्रेमपूर्ण प्रकाश में आने दो। जब डर देखा जाता है, तो वह धीरे-धीरे अपनी कठोरता खोता है।

जिस साधक को तुम मिटाना चाहते हो, वह कई बार एक घायल मन ही होता है।

उसे मारना नहीं है।

उसे समझना है।

कल्पना का भविष्य

साधक की पहचान का एक बड़ा हिस्सा भविष्य की कल्पना से बना होता है।

एक दिन मैं पूरी तरह शांत हो जाऊँगा।

एक दिन मेरे भीतर कोई विचार नहीं रहेगा।

एक दिन सब लोग मेरी उपस्थिति से बदल जाएँगे।

एक दिन मैं संसार में रहकर भी अछूता रहूँगा।

एक दिन मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा।

एक दिन मैं जान जाऊँगा — बस वही अंतिम दिन होगा।

ये कल्पनाएँ मन को चलाए रखती हैं। वे कभी प्रेरणा जैसी लगती हैं, लेकिन अक्सर वे वर्तमान की अस्वीकृति बन जाती हैं। साधक वर्तमान को छोड़कर एक कल्पित भविष्य से प्रेम करने लगता है।

पर क्या तुमने कभी देखा है कि हर कल्पना विचार में ही बनी होती है?

भविष्य का जागृत व्यक्ति भी विचार है।

भविष्य की पूर्ण शांति भी विचार है।

भविष्य का अनुभव भी अभी एक मानसिक चित्र है।

और तुम उस चित्र के पीछे भाग रहे हो।

जैसे कोई प्यासा व्यक्ति पानी की पेंटिंग को देखकर दौड़ पड़े। पेंटिंग सुंदर हो सकती है, लेकिन उससे प्यास नहीं बुझेगी। मन की बनाई हुई मुक्ति भी ऐसी ही है। वह सुंदर चित्र है। पर सत्य चित्र नहीं है। सत्य अभी की जीवित उपस्थिति है।

यहाँ।

जहाँ तुम पढ़ रहे हो।

जहाँ श्वास चल रही है।

जहाँ कोई विचार उठ रहा है।

जहाँ देखने की मौन क्षमता पहले से है।

साधक को देखना, साधक से लड़ना नहीं

अब एक बहुत महत्वपूर्ण बात।

जब यह दिखने लगे कि साधक भी विचारों से बनी पहचान है, तो मन तुरंत नया खेल शुरू कर सकता है — “मुझे इस साधक को खत्म करना है।”

यह भी साधक की ही नई चाल है।

पहले वह कहता था — “मुझे ज्ञान पाना है।”

अब वह कहता है — “मुझे साधक को मिटाना है।”

पहले लक्ष्य ज्ञान था।

अब लक्ष्य साधक-विहीन होना है।

लेकिन लक्ष्य अभी भी है।

भविष्य अभी भी है।

बनने की गति अभी भी है।

इसलिए साधक को देखकर उससे युद्ध मत करो। साधक को दोष मत दो। उसे पाप मत बनाओ। उसे आध्यात्मिक बाधा कहकर नफरत मत करो। नफरत से कोई भ्रम नहीं मिटता। नफरत भ्रम को और गहरा कर देती है।

साधक को ऐसे देखो जैसे माँ अपने डरे हुए बच्चे को देखती है।

बच्चा अंधेरे में डर गया है। वह कह रहा है — “मुझे बचाओ।” माँ उसे डाँटती नहीं कि “तुम भ्रम हो।” वह दीपक जलाती है। वह पास बैठती है। धीरे-धीरे बच्चा देखता है कि कमरे में कोई भूत नहीं था। केवल अंधेरा था।

साधक भी ऐसा ही है।

वह अज्ञान का भूत देखकर भाग रहा है।

जागरूकता का दीपक जलाओ।

युद्ध की आवश्यकता नहीं।

यह पहचान ढीली कैसे पड़ती है?

साधक की पहचान प्रयास से नहीं, देखने से ढीली पड़ती है।

जब इच्छा उठे — "मुझे जागना है" — बस देखो।

जब तुलना उठे — "वह मुझसे आगे है" — बस देखो।

जब भय उठे — "मैं कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगा" — बस देखो।

जब गर्व उठे — "मैं बहुत आध्यात्मिक हूँ" — बस देखो।

जब निराशा उठे — "मेरी साधना बेकार है" — बस देखो।

इस देखने में कोई आलोचना नहीं। कोई निर्णय नहीं। कोई जल्दी नहीं।

बार-बार लौटो उस मौन स्थान पर जहाँ से सब दिख रहा है। साधक भी दिख रहा है। उसकी इच्छा भी दिख रही है। उसकी थकान भी दिख रही है। उसकी सुंदरता भी दिख रही है। उसकी चालाकी भी दिख रही है।

जो दिख रहा है, वह तुम नहीं हो।

पर उसे नकारना भी नहीं है।

वह आता है, जाता है।

तुम देखते हो।

धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता है कि साधक एक प्रक्रिया है, सत्ता नहीं। वह विचारों की धारा है। वह कभी प्रबल होती है, कभी शांत। वह कभी रोती है, कभी उत्साहित होती है। वह कभी समर्पित होती है, कभी बेचैन।

लेकिन वह स्थायी नहीं।

वह बादल है।

तुम आकाश हो।

पवित्र सरलता की ओर

जब साधक की पहचान ढीली पड़ती है, तो जीवन में एक पवित्र सरलता आने लगती है।

तुम ध्यान करते हो, लेकिन अब ध्यान से अपनी पहचान नहीं बनाते।

तुम भक्ति करते हो, लेकिन अब भक्ति से विशेष नहीं बनते।

तुम गुरु से प्रेम करते हो, लेकिन अब निर्भरता में नहीं गिरते।

तुम शास्त्र पढ़ते हो, लेकिन अब शब्दों से स्वयं को भारी नहीं करते।

तुम साधना करते हो, पर भीतर एक हल्कापन होता है।

क्योंकि अब साधना बनने की दौड़ नहीं, देखने का आनंद बनती है।

अब यात्रा का अर्थ यह नहीं कि तुम्हें कहीं पहुँचना है। यात्रा का अर्थ है — हर कदम पर देखना कि कौन चल रहा है। कौन चाह रहा है। कौन डर रहा है। कौन तुलना कर रहा है। कौन कह रहा है — “मैं साधक हूँ।”

और कभी-कभी अचानक एक गहरी हँसी उठ सकती है।

इतने वर्षों से जिसे मैं “मैं” कह रहा था, वह तो विचारों की छोटी-सी गठरी थी।

स्मृतियों की।

इच्छाओं की।

डरों की।

कल्पनाओं की।

और जिस जागरूकता में यह गठरी दिख रही है, वह कभी बंधी ही नहीं थी।

अंतिम विराम

साधक को मिटाना नहीं है।

साधक को समझना है।

समझना भी विचार से नहीं, साक्षीभाव से।

जब तुम उसे प्रेम से देखते हो, तो वह धीरे-धीरे अपनी कठोरता खो देता है। उसकी पकड़ ढीली पड़ती है। वह अब तुम्हें पूरी तरह चला नहीं पाता। वह उठता है, पर तुम उसे देख लेते हो। वह कहता है — "मुझे बनना है।" और तुम शांत होकर मुस्कुरा सकते हो।

क्योंकि अब तुम्हें थोड़ा-थोड़ा दिखने लगा है —

बनने की हर इच्छा उसी में उठती है जो पहले से है।

खोजने वाला विचार है।

देखने वाला मौन है।

साधक समय में चलता है।

जागरूकता अभी है।

और यही अभी, यही मौन, यही सरल देखना — वही द्वार है जिसके सामने साधक वर्षों से खड़ा था।

द्वार बंद नहीं था।

साधक केवल अपने ही विचारों की धुंध में देख नहीं पा रहा था।

अब धुंध को हटाने की जल्दी भी मत करो।

बस देखो।

धुंध भी आती है।

धुंध भी जाती है।

आकाश प्रतीक्षा नहीं करता।

वह पहले से खुला है।

अध्याय ३

जागरण उपलब्धि क्यों नहीं हो सकता

✦

मन उपलब्धि की भाषा समझता है।

वह हर चीज़ को यात्रा बना देता है। यहाँ से वहाँ। आरंभ से अंत तक। कमी से पूर्णता तक। अज्ञान से ज्ञान तक। दुख से मुक्ति तक।

मन को यह ढाँचा बहुत प्रिय है, क्योंकि इसमें वह जीवित रहता है। जब तक कोई मंज़िल दूर है, तब तक मन के पास काम है। वह योजना बना सकता है। तुलना कर सकता है। आशा रख सकता है। निराश हो सकता है। फिर से उठ सकता है। किसी मार्ग को पकड़ सकता है। किसी विधि को अपना सकता है। किसी दिन की प्रतीक्षा कर सकता है।

लेकिन जागरण इसी ढाँचे में नहीं आता।

मुक्ति कोई उपलब्धि नहीं है।

ज्ञान कोई वस्तु नहीं है।

सत्य कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे तुम अपने जीवन की सूची में जोड़ सको — धन, घर, संबंध, सम्मान, और फिर अंत में “जागरण”।

यदि जागरण उपलब्धि होता, तो वह समय में मिलता। और जो समय में मिलता है, वह समय में खो भी जाता है।

यही बात बहुत शांत होकर समझनी है।

उपलब्धि समय की वस्तु है

कोई भी उपलब्धि एक कहानी चाहती है।

पहले मैं नहीं जानता था, अब जानता हूँ।

पहले मेरे पास नहीं था, अब मेरे पास है।

पहले मैं यहाँ था, अब वहाँ पहुँच गया हूँ।

यह संसार में ठीक है। बच्चा चलना सीखता है। विद्यार्थी पढ़ाई पूरी करता है। कलाकार कला में निपुण होता है। व्यापारी व्यापार बढ़ाता है। शरीर अभ्यास से बलवान होता है। ये सब समय में घटने वाली बातें हैं। इनमें प्रयास, अभ्यास, असफलता, सुधार और परिणाम होते हैं।

लेकिन जो तुम्हारा स्वभाव है, क्या वह भी समय से मिलेगा?

क्या आकाश को आकाश बनने के लिए अभ्यास करना पड़ता है?

क्या स्क्रीन को स्क्रीन बनने के लिए फिल्म समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है?

फिल्म चलती है। दृश्य आते हैं। कोई दृश्य युद्ध का है, कोई प्रेम का, कोई दुख का, कोई उत्सव का। स्क्रीन सबको जगह देती है। वह दृश्य के साथ बदलती हुई दिखाई दे सकती है, पर वह स्वयं दृश्य नहीं बनती। आग का दृश्य आए, स्क्रीन जलती नहीं। वर्षा का दृश्य आए, स्क्रीन भीगती नहीं। मृत्यु का दृश्य आए, स्क्रीन मरती नहीं।

तुम्हारी जागरूकता भी ऐसी ही है।

जीवन की फिल्म चल रही है। बचपन आया। युवावस्था आई। संबंध आए। दुख आए। आशाएँ आईं। भय आए। आध्यात्मिक खोज आई। ध्यान के अनुभव आए। निराशा आई। फिर कभी शांति आई।

पर जो यह सब जान रहा है, क्या वह भी इन दृश्यों की तरह आया और गया?

उपलब्धि फिल्म की कहानी में होती है।

जागरूकता स्क्रीन की तरह है।

स्क्रीन कहानी की उपलब्धि नहीं हो सकती।

मन को मंज़िल क्यों चाहिए

मन बिना मंज़िल के असुरक्षित महसूस करता है। यदि कोई कह दे कि सत्य अभी है, मन पूछता है — “फिर मुझे करना क्या है?”

क्योंकि मन की पूरी पहचान करने में है। पाने में है। बनने में है। आगे बढ़ने में है।

जब कहा जाता है कि जागरण कोई भविष्य की घटना नहीं, तो मन को ऐसा लगता है जैसे उसके हाथ से जमीन खिसक गई। वह तुरंत पूछता है — “तो फिर साधना क्यों? ध्यान क्यों? गुरु क्यों? मार्ग क्यों?”

यह प्रश्न स्वाभाविक है।

लेकिन ध्यान से देखो।

साधना जागरण को पैदा नहीं करती। साधना केवल उस भ्रम को देखने में सहायता कर सकती है जिसके कारण जागरण दूर लगता है।

ध्यान जागरूकता नहीं बनाता। ध्यान मन की धूल को थोड़ा बैठा सकता है, ताकि जागरूकता की उपस्थिति स्पष्ट दिखाई दे।

गुरु तुम्हें सत्य नहीं देता। गुरु तुम्हें उस दिशा में देखने को कहता है, जहाँ तुमने कभी ठीक से देखा ही नहीं।

मार्ग तुम्हें कहीं ले नहीं जाता। सही अर्थ में मार्ग तुम्हें यह दिखाता है कि तुम जिसे मंज़िल समझ रहे थे, वह तुम्हारी अपनी उपस्थिति से अलग नहीं है।

मन यात्रा चाहता है, क्योंकि यात्रा में मन को अर्थ मिलता है।

जागरूकता को यात्रा नहीं चाहिए।

वह पहले से है।

जागरूकता समय में नहीं है

समय आता-जाता दिखाई देता है।

सुबह होती है। दोपहर होती है। शाम उतरती है। रात आती है। वर्ष बदलते हैं। शरीर बदलता है। चेहरे बदलते हैं। नाम, भूमिकाएँ, संबंध, इच्छाएँ — सब बदलते हैं।

और इन सब परिवर्तनों का ज्ञान है।

जिसे परिवर्तन का ज्ञान है, वह स्वयं उसी परिवर्तन की तरह कैसे होगा?

यदि तुम कहते हो, “मेरा बचपन चला गया,” तो कुछ है जो बचपन की स्मृति को जान रहा है। यदि तुम कहते हो, “मैं अब पहले जैसा नहीं रहा,” तो कुछ है जो पहले और अब दोनों को देख रहा है। यदि तुम कहते हो, “समय बहुत तेज़ी से निकल रहा है,” तो कुछ है जो समय के निकलने को भी जान रहा है।

उस जानने वाले को तुम समय में कहाँ रखोगे?

वह बचपन में भी था।

युवावस्था में भी है।

वृद्धावस्था में भी रहेगा, जब तक अनुभव का खेल चलता है।

विचार बदलते हैं, पर जानने की रोशनी वही रहती है। भावनाएँ बदलती हैं, पर उन्हें जानने की क्षमता वही रहती है। शरीर की उम्र बदलती है, पर “मैं हूँ” की मौन अनुभूति में कोई उम्र नहीं दिखती।

तुम कहते हो — “मैं पाँच साल का था।”

फिर कहते हो — “मैं बीस साल का था।”

फिर कहते हो — “मैं आज इतना हूँ।”

उम्र बदलती गई, पर “मैं हूँ” की मूल अनुभूति हर उम्र में एक ही तरह उपस्थित रही। उस पर वर्षों की संख्या लिखी जा सकती है, पर वह स्वयं संख्या नहीं है।

समय जागरूकता में आता है।

जागरूकता समय में नहीं आती।

इसीलिए जागरण समय की उपलब्धि नहीं हो सकता।

अनुभव आते हैं और चले जाते हैं

साधना में अनुभव आ सकते हैं।

गहरी शांति आ सकती है। शरीर हल्का लग सकता है। आँखों के पीछे प्रकाश दिख सकता है। कोई गहरा मौन उतर सकता है। प्रेम की लहर उठ सकती है। ऐसा लग सकता है जैसे सब कुछ एक है। कुछ क्षणों के लिए मन बिल्कुल शांत हो सकता है।

ये अनुभव सुंदर हैं।

इन्हें नकारने की जरूरत नहीं।

जब फूल खिलता है, तो उसकी सुगंध का आनंद लिया जा सकता है। जब सुबह की हवा चलती है, तो उसे महसूस किया जा सकता है। जब भीतर शांति उतरती है, तो उसे भी प्रेम से देखा जा सकता है।

लेकिन फूल स्थायी नहीं है।

हवा रुक जाती है।

शांति का अनुभव भी बदल सकता है।

यदि तुम अनुभव को जागरण समझ लेते हो, तो अनुभव के जाते ही तुम्हारा जागरण भी खो जाता है। फिर मन दुखी होता है — “वह अवस्था चली गई। मैं गिर गया। मैं पहले बहुत गहरा था, अब खो गया हूँ।”

पर देखो — अनुभव गया, लेकिन यह जानना कि अनुभव गया, कहाँ से आया?

शांति आई — तुमने जाना।

शांति गई — तुमने जाना।

प्रकाश आया — तुमने जाना।

अंधकार आया — तुमने जाना।

आनंद आया — तुमने जाना।

सूखापन आया — तुमने जाना।

जो आता-जाता है, वह अनुभव है।

जो आने-जाने को जानता है, वह तुम हो।

साधक अनुभव को पकड़ना चाहता है। जागरूकता पकड़ती नहीं। वह सबको आने देती है, जाने देती है। उसके लिए आनंद भी अतिथि है, दुख भी अतिथि है। मौन भी अतिथि है, विचार भी अतिथि है।

घर कौन है?

अतिथि नहीं।

घर वह है जिसमें अतिथि आते-जाते हैं।

आनंद भी अंतिम नहीं

कई साधक आनंद में फँस जाते हैं। आनंद सूक्ष्म जाल है, क्योंकि वह दुख जैसा नहीं लगता। दुख से मन भागना चाहता है। आनंद को मन पकड़ना चाहता है।

ध्यान में एक दिन गहरा सुख आया। लगा कि यही है। फिर अगले दिन वैसा नहीं हुआ। मन बेचैन हो गया। फिर प्रयास शुरू हुआ — कैसे वही आनंद फिर मिले? कौन-सी मुद्रा में बैठा था? कितनी देर बैठा था? कौन-सा मंत्र था? कौन-सा संगीत था? कौन-सा स्थान था?

इस तरह आनंद भी बंधन बन सकता है।

किसी भी अनुभव को “मेरा” बनाते ही बंधन शुरू हो जाता है।

आनंद आए, तो उसे प्रणाम करो।

दुख आए, तो उसे भी जगह दो।

पर किसी को अपना घर मत बना लो।

तुम्हारा घर अनुभव में नहीं है।

तुम्हारा घर उस जानने में है जिसमें अनुभव चमकते और बुझते हैं।

समुद्र में लहर उठती है। कुछ लहरें सुंदर हैं, कुछ उग्र। कुछ छोटी हैं, कुछ विराट। पर समुद्र किसी एक लहर को पकड़कर नहीं कहता — “यही मैं हूँ।” यदि समुद्र किसी एक शांत लहर से अपनी पहचान बना ले, तो अगली तूफानी लहर उसे भयभीत कर देगी।

तुम समुद्र हो।

लहरों को आने दो।

दृष्टि, प्रकाश और सूक्ष्म मोह

कई बार साधक को दर्शन होते हैं। कोई आकृति दिखती है। कोई ज्योति दिखाई देती है। कोई ध्वनि सुनाई देती है। शरीर में ऊर्जा चलती है। कोई अद्भुत अनुभूति होती है।

इन सबको लेकर मन बहुत जल्दी निष्कर्ष बना लेता है — “मैं आगे बढ़ रहा हूँ। मुझे संकेत मिल रहा है। मैं विशेष हूँ।”

यहीं आध्यात्मिक अहंकार बहुत सूक्ष्म रूप से प्रवेश करता है।

जो अनुभव आया, वह भी जागरूकता में ही आया। वह कितना भी सुंदर हो, वह दृश्य है। और जो दृश्य है, वह देखने वाले से अलग है।

दृश्य का सम्मान करो, पर उसमें खोओ मत।

प्रकाश दिखे, तो पूछो — जो प्रकाश को जान रहा है, वह क्या है?

मौन उतरे, तो पूछो — जो मौन को जान रहा है, वह क्या है?

आनंद उठे, तो पूछो — जो आनंद को जान रहा है, वह क्या है?

यह प्रश्न अनुभव को नष्ट करने के लिए नहीं है। यह तुम्हें अनुभव से पीछे, उस शुद्ध जानने की ओर लौटा देता है जहाँ कोई दावा नहीं है।

बदलने वाला घटना है

जो बदलता है, वह घटना है।

विचार घटना है।

भावना घटना है।

आनंद घटना है।

ध्यान की गहराई घटना है।

मन की शांति घटना है।

शरीर की ऊर्जा घटना है।

आँसू घटना हैं।

हँसी घटना है।

एक दिन की स्पष्टता भी घटना हो सकती है।

घटना का अर्थ है — वह प्रकट हुई, फिर बदली, फिर चली गई।

जागरण यदि घटना होगा, तो वह भी जाएगा।

लेकिन सत्य जाने वाली चीज़ कैसे हो सकता है?

सत्य वह नहीं जो एक दिन शुरू हो। सत्य वह है जिसके बिना कोई भी दिन शुरू नहीं हो सकता। सत्य वह नहीं जो किसी विशेष अवस्था में मिलता है। सत्य वह है जिसके प्रकाश में हर अवस्था जानी जाती है।

इसीलिए बदलने वाले में अंतिम सत्य मत खोजो।

बदलने वाला सुंदर हो सकता है, उपयोगी हो सकता है, प्रेरक हो सकता है, लेकिन अंतिम नहीं हो सकता।

अंतिम वह है जो कभी वस्तु की तरह सामने नहीं आता, क्योंकि वही देखने की मूल भूमि है।

बदलाहट-रहित कोई घटना नहीं होती

एक घटना के लिए बदलाव आवश्यक है।

पहले कुछ नहीं था, फिर कुछ हुआ।

पहले अंधेरा था, फिर प्रकाश हुआ।

पहले दुख था, फिर आनंद हुआ।

पहले भ्रम था, फिर स्पष्टता हुई।

घटना हमेशा दो अवस्थाओं के बीच होती है।

पर जागरूकता किसी अवस्था के बीच की चीज़ नहीं है। वह हर अवस्था की साक्षी है। वह अंधेरे में भी है, प्रकाश में भी। भ्रम में भी है, स्पष्टता में भी। दुख में भी है, आनंद में भी।

इसलिए जागरण कोई “बिग बैंग” नहीं है जैसा मन कल्पना करता है।

हो सकता है कुछ लोगों के जीवन में कोई तीव्र क्षण आया हो। हो सकता है किसी को अचानक गहरी स्पष्टता मिली हो। हो सकता है किसी के भीतर एक झटका-सा लगा हो और पहचान ढीली पड़ गई हो। लेकिन वह क्षण भी केवल पहचान के गिरने का क्षण था। सत्य उस क्षण पैदा नहीं हुआ।

सूरज बादल हटने पर दिखाई देता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि सूरज अभी पैदा हुआ।

बादल हटे।

सूरज प्रकट हुआ।

सत्य भी ऐसा ही है। वह कभी अनुपस्थित नहीं था। केवल मन की धुंध ने उसे ढँका हुआ मान लिया था।

शांत पहचान

जागरण का अर्थ कोई असाधारण व्यक्ति बन जाना नहीं है।

जागरण का अर्थ है — असत्य पहचान की पकड़ ढीली पड़ना।

यह बहुत शांत हो सकता है। इतना शांत कि मन कहे — “बस इतना ही?” क्योंकि मन को नाटक चाहिए। मन को विशेष अनुभव चाहिए। मन को प्रमाण चाहिए। मन चाहता है कि कोई अंतिम मुहर लगे — “अब तुम मुक्त हो।”

पर सत्य को प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

जब रस्सी को साँप समझकर भय हुआ, और दीपक जलने पर रस्सी दिख गई, तो क्या कोई बड़ी उपलब्धि हुई? नहीं। केवल भ्रम मिटा। साँप को मारना नहीं पड़ा। साँप को हटाना नहीं पड़ा। साँप था ही नहीं। केवल गलत देखना था।

जागरण भी कुछ ऐसा ही है।

एक गलत पहचान थी — “मैं सीमित मन-शरीर हूँ।”

उसके कारण भय, इच्छा, तुलना, खोज, असुरक्षा उठी।

फिर शांत देखने में यह पहचान ढीली पड़ी।

जो पहले से था, वही स्पष्ट हुआ।

यह घटना जैसी दिख सकती है, पर वस्तुतः यह पहचान का भ्रम टूटना है। सत्य प्राप्त नहीं हुआ। असत्य पकड़ा नहीं रहा।

उपलब्धि छोड़ो, देखना शुरू करो

अब प्रश्न यह नहीं है कि “मैं जागरण कैसे प्राप्त करूँ?”

प्रश्न यह है — “जो जागरण को प्राप्त करना चाहता है, वह अभी क्या है?”

अभी देखो।

क्या यह इच्छा एक विचार नहीं है?

क्या यह चाह एक हलचल नहीं है?

क्या यह हलचल भी तुम्हारी जागरूकता में नहीं उठ रही?

यदि जागरण की इच्छा भी देखी जा रही है, तो देखने वाला जागरण की इच्छा से पहले है या बाद में?

धीरे-धीरे मन शांत होता है। उसे पहली बार समझ आता है कि वह जिसको पाना चाहता था, उसी के प्रकाश में पाना चाह रहा था। जैसे कोई व्यक्ति चश्मा पहनकर चश्मे को खोज रहा हो। जैसे कोई मछली पानी में रहते हुए पानी की खोज कर रही हो। जैसे कोई लहर समुद्र बनने की साधना कर रही हो।

यह समझ हँसी भी ला सकती है।

और गहरा मौन भी।

क्योंकि मन ने जिसे सबसे दूर समझा था, वही सबसे निकट नहीं — वही स्वयं था।

अंतिम संकेत

जागरण तुम्हारी जीवन-कथा की उपलब्धि नहीं है।

वह जीवन-कथा को जानने वाली मौन उपस्थिति है।

मुक्ति भविष्य का पुरस्कार नहीं है।

वह अभी की उस खुली जगह में पहचानी जाती है जहाँ विचार, भय, इच्छा और खोज आते-जाते हैं।

अनुभवों का सम्मान करो, पर उनमें मत खोओ।

शांति आए, तो उसे आने दो।

अशांति आए, तो उसे भी आने दो।

प्रकाश आए, तो देखो।

अंधकार आए, तो देखो।

पर बार-बार लौटो उस देखने में जो किसी अवस्था से बँधा नहीं है।

यही साधना की कोमलता है।

यही साक्षीभाव की गहराई है।

यही मुक्ति का द्वार है — जो खुलता नहीं, क्योंकि कभी बंद ही नहीं था।

तुम्हें उसे प्राप्त नहीं करना।

तुम्हें केवल यह देखना है कि तुम उससे अलग कभी थे ही नहीं।

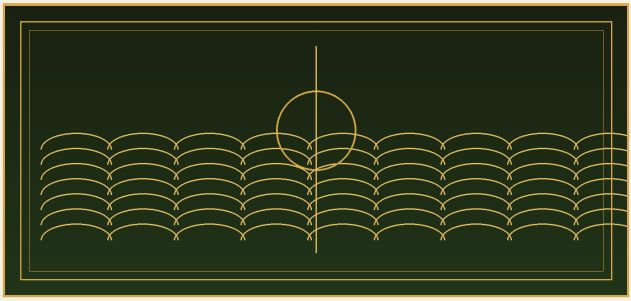

चित्र: समुद्र और लहरें — अनुभव आते-जाते हैं, आधार वही रहता है।

अध्याय ४

आध्यात्मिक अनुभवों का जाल

✦

साधना के मार्ग पर कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जो साधारण जीवन से बिल्कुल अलग लगते हैं।

अचानक भीतर गहरी शांति उतर आती है। शरीर हल्का हो जाता है। जैसे कोई बोझ वर्षों बाद गिर गया हो। आँखें बंद हैं, लेकिन भीतर प्रकाश-सा फैलता है। कभी शरीर में ऊर्जा की लहरें चलती हैं। कभी रीढ़ में कंपन-सा अनुभव होता है। कभी ऐसा लगता है जैसे मन रुक गया है। कभी प्रेम इतना भर जाता है कि आँखें अपने-आप भीग जाती हैं। कभी एक विशाल मौन सबको ढँक लेता है।

इन क्षणों में मन तुरंत कहता है — “यही है।”

साधक सोचता है — “मैं पहुँच गया।”

और यहीं एक नया जाल शुरू होता है।

यह जाल दुख का नहीं है।

यह जाल सुंदर है।

इसलिए अधिक सूक्ष्म है।

दुख से हम भागते हैं। आनंद को हम पकड़ना चाहते हैं। अंधकार से डर लगता है। प्रकाश को हम अपना बनाना चाहते हैं। बेचैनी को हम हटाना चाहते हैं। मौन को हम स्थायी करना चाहते हैं।

इसीलिए आध्यात्मिक अनुभव साधक को बहुत गहराई से बाँध सकते हैं।

वे असत्य नहीं हैं। वे झूठे नहीं हैं। वे सुंदर हो सकते हैं, पवित्र हो सकते हैं, मन को विश्राम दे सकते हैं। लेकिन वे तुम नहीं हो।

जो आता है, वह तुम नहीं हो।

जो जाता है, वह भी तुम नहीं हो।

तुम वह हो जिसमें आना-जाना दिखाई देता है।

अनुभव इतने सच्चे क्यों लगते हैं

जब मन लंबे समय तक बेचैनी में रहा हो, और अचानक ध्यान में गहरी शांति उतर आए, तो वह शांति अंतिम सत्य जैसी लगती है। जब वर्षों का भारीपन कुछ क्षणों के लिए गायब हो जाए, तो साधक को लगता है — “अब मुझे मिल गया।”

यह स्वाभाविक है।

रेगिस्तान में चलते हुए किसी को जल दिखे, तो वह उसके पीछे भागेगा ही। बहुत प्यासे व्यक्ति के लिए पानी केवल पानी नहीं होता; वह जीवन जैसा लगता है। उसी तरह दुख से थका हुआ मन जब आनंद, मौन या प्रकाश को छूता है, तो उसे लगता है — “यही मुक्ति है।”

पर थोड़ा शांत होकर देखो।

क्या वह अनुभव पहले था?

नहीं।

क्या वह आया?

हाँ।

क्या वह बदल सकता है?

हाँ।

तो वह अंतिम कैसे होगा?

अंतिम वह नहीं हो सकता जो शुरू हुआ।

जो शुरू हुआ, वह समाप्त भी होगा।

अनुभव चाहे कितना भी गहरा हो, उसकी एक शुरुआत होती है। पहले सामान्य अवस्था थी, फिर अनुभव आया। फिर कुछ देर रहा। फिर बदला। फिर स्मृति बन गया।

जो स्मृति बन सकता है, वह तुम नहीं हो।

तुम स्मृति को जानने वाले हो।

आनंद का सूक्ष्म मोह

आनंद बहुत मधुर होता है। साधक उसके प्रति आसानी से आकर्षित हो जाता है।

ध्यान में आनंद आया, तो मन कहता है — “अब यही चाहिए।” फिर साधना आनंद पाने की विधि बन जाती है। बैठना भी आनंद के लिए। मौन भी आनंद के लिए। प्रार्थना भी आनंद के लिए। गुरु भी आनंद के लिए। फिर जब आनंद नहीं आता, तो बेचैनी आती है।

देखो, यही मन का पुराना ढाँचा है।

पहले वह संसारिक सुख खोज रहा था।

अब वह आध्यात्मिक सुख खोज रहा है।

पहले उसे वस्तु चाहिए थी।

अब उसे अवस्था चाहिए।

लेकिन चाह वही है।

यहाँ आनंद का दोष नहीं है। जैसे फूल की सुगंध दोषी नहीं होती। दोष पकड़ में है। फूल खिले, उसकी सुगंध लो। पर फूल को पकड़कर मुट्ठी में बंद करोगे, तो वह मुरझा जाएगा।

आनंद आए, उसे आने दो।

वह कृपा की तरह आए।

उसे मत भगाओ।

उसे मत पकड़ो।

उसे प्रमाण मत बनाओ।

केवल जानो — आनंद भी आकाश में उठी एक सुनहरी लहर है।

लहर सुंदर है, पर समुद्र उससे बड़ा है।

शांति भी अनुभव हो सकती है

कई बार साधक शांति को ही अंतिम सत्य मान लेता है। उसे लगता है कि जब मन शांत है, तभी वह सत्य के निकट है। जब विचार उठते हैं, वह स्वयं को गिरा हुआ मानता है।

यह एक बहुत गहरी गलतफहमी है।

मन की शांति सुंदर है। शांत मन में देखना आसान होता है। जैसे स्थिर जल में चाँद स्पष्ट दिखता है। लेकिन चाँद जल में पैदा नहीं होता। जल स्थिर हो या तरंगित, चाँद आकाश में है।

उसी तरह मन शांत हो, तो जागरूकता स्पष्ट दिखाई देती है। मन अशांत हो, तो जागरूकता छिपी हुई लगती है। लेकिन जागरूकता मन की अवस्था पर निर्भर नहीं है।

शांति आई — तुमने जाना।

शांति गई — तुमने जाना।

विचार आए — तुमने जाना।

विचार रुके — तुमने जाना।

तो जो जान रहा है, वह शांति से भी पहले है।

शांति प्रिय है।

पर शांति भी यदि अनुभव है, तो वह आती-जाती है।

जागरूकता शांति का भी साक्षी है।

प्रकाश, दर्शन और ऊर्जा की लहरें

साधना में कभी-कभी प्रकाश दिखाई दे सकता है। कोई आकृति, कोई रंग, कोई ध्वनि, कोई आंतरिक कंपन, कोई ऊर्जा की गति। कभी शरीर में गर्मी उठती है। कभी ठंडक फैलती है। कभी सिर में दबाव-सा लगता है। कभी रीढ़ में हलचल होती है। कभी ऐसा लगता है जैसे भीतर कोई द्वार खुल रहा है।

ऐसे अनुभवों से डरने की आवश्यकता नहीं।

और ऐसे अनुभवों पर गर्व करने की भी आवश्यकता नहीं।

वे शरीर-मन की सूक्ष्म प्रक्रियाएँ हो सकती हैं। वे ध्यान की गहराई से उठे हुए परिवर्तन हो सकते हैं। वे पुराने तनावों के ढीले पड़ने की लहरें हो सकती हैं। वे केवल मन की चित्रकारी भी हो सकती हैं।

उनकी व्याख्या में बहुत जल्दी मत करो।

मन हर अनुभव को अर्थ देना चाहता है। वह कहता है — “यह संकेत है।” “यह सिद्धि है।” “यह जागरण का प्रमाण है।” “अब मैं विशेष हूँ।” “अब मेरी यात्रा आगे बढ़ गई।”

यहीं सावधानी चाहिए।

प्रकाश दिखे, तो प्रकाश को देखो।

ऊर्जा चले, तो ऊर्जा को देखो।

कंपन हो, तो कंपन को देखो।

मौन आए, तो मौन को देखो।

पर बार-बार पूछो — जो इसे जान रहा है, वह क्या है?

दृश्य बदल सकता है।

द्रष्टा की मौन उपस्थिति वही रहती है।

अनुभव पहचान बन जाते हैं

साधक का मन अनुभवों से अपनी नई पहचान बना लेता है।

“मुझे वह गहरी अवस्था मिली थी।”

“मेरे भीतर ऊर्जा उठी थी।”

“मैंने प्रकाश देखा है।”

“मैंने एक बार ऐसा मौन जाना है जिसे शब्द नहीं कह सकते।”

ये बातें झूठ नहीं भी हो सकतीं। लेकिन सावधान रहो — स्मृति से बनी आध्यात्मिक पहचान फिर से एक नया बोझ बन जाती है।

जो क्षण जीवित था, वह बीत गया।

अब मन उसकी तस्वीर लेकर बैठा है।

जीवित अनुभव फूल था।

स्मृति उसकी सूखी पंखुड़ी है।

मन सूखी पंखुड़ी को पकड़कर कहता है — “मेरा फूल।”

इस तरह साधक अनुभव के बाद भी मुक्त नहीं होता। वह अनुभव की स्मृति से बँध जाता है। फिर वह उसी अनुभव को दोहराना चाहता है। फिर तुलना शुरू होती है — पहले जैसी शांति अब क्यों नहीं? पहले जैसा आनंद अब क्यों नहीं? पहले जो प्रकाश था, अब क्यों नहीं?

इस तरह आध्यात्मिक अनुभव भी दुख का कारण बन सकता है, यदि उसे पकड़ लिया जाए।

क्योंकि पकड़ हमेशा भय लाती है।

जिसे पकड़ा है, उसके खोने का डर भी साथ आता है।

जो जानता है, वह अनुभव से गहरा है

अब इस बात को बहुत धीरे से भीतर उतरने दो।

आनंद आया।

तुमने जाना।

आनंद गया।

तुमने जाना।

प्रकाश आया।

तुमने जाना।

अंधकार आया।

तुमने जाना।

ऊर्जा उठी।

तुमने जाना।

शरीर भारी हुआ।

तुमने जाना।

मन शांत हुआ।

तुमने जाना।

मन विक्षिप्त हुआ।

तुमने जाना।

यह “जानना” हर अनुभव में साथ है। अनुभव बदलते रहे, लेकिन जानने की रोशनी नहीं बदली। जैसे कमरे में अलग-अलग लोग आते हैं। कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई गाता है, कोई मौन बैठता है। पर कमरा सबको जगह देता है। कमरे की दीवारें किसी एक अतिथि की कहानी नहीं बन जातीं।

तुम अनुभव के अतिथि नहीं हो।

तुम वह खुला कमरा हो जिसमें अतिथि आते-जाते हैं।

आनंद अतिथि है।

शांति अतिथि है।

ऊर्जा अतिथि है।

दर्शन अतिथि हैं।

मौन भी अतिथि हो सकता है।

पर जागरूकता घर है।

और घर को अतिथि बनने की आवश्यकता नहीं।

अनुभव को अस्वीकार मत करो

यहाँ एक और भ्रम पैदा हो सकता है।

मन सुनता है कि अनुभव अंतिम नहीं हैं। फिर वह अनुभवों से डरने लगता है। वह कहता है — “मुझे आनंद में नहीं जाना चाहिए। मुझे प्रकाश को महत्व नहीं देना चाहिए। मुझे शांति से भी सावधान रहना चाहिए।”

यह भी कठोरता है।

यह भी पकड़ का उल्टा रूप है।

पहले मन अनुभव को पकड़ता था।

अब मन अनुभव को धक्का देने लगता है।

दोनों में केंद्र वही है — मन।

साक्षीभाव न पकड़ता है, न धक्का देता है। वह अनुमति देता है।

आनंद आए — आओ।

दुख आए — आओ।

मौन आए — आओ।

विचार आए — आओ।

प्रकाश आए — आओ।

अंधकार आए — आओ।

कुछ भी आए, जागरूकता उसे जगह देती है। जैसे आकाश बादलों से नहीं कहता — “सफेद बादल आ सकते हैं, काले बादल नहीं।” आकाश सबको आने देता है। लेकिन किसी बादल को अपना स्वरूप नहीं मानता।

यही मध्य मार्ग है।

स्वीकार है।

पर चिपकना नहीं।

खुलापन है।

पर पहचान नहीं।

ध्यान की ऊँचाई और जीवन की साधारणता

कभी ध्यान में बहुत ऊँची अवस्था मिलती है। फिर साधक उठता है, घर लौटता है, कोई कुछ कह देता है, क्रोध आ जाता है। फिर वह टूट जाता है — "मेरी अवस्था कहाँ चली गई?"

यह भी देखना आवश्यक है।

ध्यान की अवस्था और जीवन की वास्तविकता को अलग मत करो। यदि ध्यान में मिली शांति छोटी-सी बात से टूट जाती है, तो उसे दोष मत दो। उसे देखो। वह शांति अनुभव थी। सुंदर थी। उपयोगी थी। पर अभी पहचान गहरी नहीं हुई।

जागरण का अर्थ यह नहीं कि कोई अनुभव हमेशा बना रहे।

जागरण का अर्थ है — अनुभव बदलें, फिर भी तुम्हारी पहचान उनसे बँधी न रहे।

क्रोध उठे, तो देखा जाए।

दुख उठे, तो देखा जाए।

भय उठे, तो देखा जाए।

शांति उठे, तो देखा जाए।

यही साक्षीभाव है।

जो केवल आनंद को देखे और दुख से भागे, वह अभी चयन कर रहा है। जो केवल मौन चाहता है और विचार से लड़ता है, वह अभी शर्त लगा रहा है। जागरूकता शर्त नहीं लगाती।

वह जीवन को जैसा उठता है, वैसा देखती है।

अंतिम जाल: “मेरा अनुभव सबसे गहरा”

आध्यात्मिक अनुभवों से तुलना भी जन्म लेती है।

किसी ने कहा — “मुझे ध्यान में प्रकाश दिखा।”

दूसरे ने कहा — “मुझे शरीर से बाहर होने जैसा लगा।”

तीसरे ने कहा — “मेरा मन पूरी तरह रुक गया था।”

फिर साधक भीतर-भीतर मापने लगता है। किसका अनुभव बड़ा? कौन अधिक आगे? किसे अधिक कृपा मिली? कौन विशेष?

यह बहुत सूक्ष्म खेल है।

सत्य में कोई प्रतियोगिता नहीं।

आकाशों की दौड़ नहीं होती।

समुद्रों की तुलना नहीं होती।

जो अनुभव तुम्हारे भीतर आया, वह तुम्हारी यात्रा की एक लहर थी। किसी और के भीतर जो आया, वह उसकी लहर थी। लहरों को तुलना में रखोगे तो समुद्र भूल जाओगे।

अपने अनुभवों को भी हल्का रखो।

दूसरों के अनुभवों को भी हल्का सुनो।

जो सुन रहा है, उसी में ठहरो।

अनुभव से अनुभवकर्ता की ओर

हर अनुभव एक संकेत बन सकता है, यदि तुम उसे पकड़ो नहीं।

आनंद आए, तो उससे पूछो — तू किसमें उठा?

शांति आए, तो देखो — तुझे कौन जान रहा है?

प्रकाश आए, तो देखो — प्रकाश को देखने वाला क्या स्वयं दिखाई देता है?

मौन आए, तो देखो — मौन का भी ज्ञान किसे है?

इस तरह अनुभव द्वार बनता है, जाल नहीं।

जाल तब बनता है जब तुम अनुभव में रुक जाते हो।

द्वार तब खुलता है जब अनुभव तुम्हें अनुभवकर्ता की ओर लौटा देता है।

और फिर धीरे-धीरे यह भी दिखता है कि अनुभवकर्ता भी कोई व्यक्ति नहीं। वहाँ केवल जानना है। केवल मौन उपस्थिति है। कोई दावा नहीं। कोई प्रमाण नहीं। कोई घोषणा नहीं।

बस यह सरल, खुला, जागा हुआ होना।

अंतिम विराम

आध्यात्मिक अनुभवों से डरो मत।

उनका अपमान मत करो।

उनकी पूजा भी मत करो।

उन्हें आने दो।

उन्हें जाने दो।

उनसे सीखो, पर उनमें घर मत बनाओ।

क्योंकि तुम्हारा घर अनुभव में नहीं है।

तुम्हारा घर उस जागरूकता में है जिसमें सभी अनुभव उठते हैं।

आनंद आए, तो मुस्कुराओ।

दुख आए, तो नरम रहो।

प्रकाश आए, तो धन्यवाद दो।

अंधकार आए, तो भी उपस्थित रहो।

ऊर्जा उठे, तो उसे जगह दो।

शांति उतरे, तो उसे पकड़ो मत।

जो आता है, वह अतिथि है।

जो जानता है, वह घर है।

और तुम घर हो।

अतिथि नहीं।

यहीं साधक की पकड़ ढीली पड़ती है।

वह अनुभवों का संग्राहक नहीं रहता।

वह धीरे-धीरे अनुभवों के बीच उस मौन को पहचानने लगता है, जो कभी आया नहीं, इसलिए कभी जाएगा भी नहीं।

अध्याय ५

गुरु, विधि और छिपी हुई निर्भरता

✦

साधक जब भीतर की बेचैनी से थकता है, तो स्वाभाविक रूप से वह किसी सहारे की ओर देखता है।

किसी पुस्तक की ओर।

किसी गुरु की ओर।

किसी विधि की ओर।

किसी सत्संग, आश्रम, तीर्थ या ध्यान-शिविर की ओर।

यह गलत नहीं है।

जब रात घनी हो और दिशा दिखाई न दे, तो एक दीपक बहुत सहायक होता है। जब कोई रास्ता भूल गया हो, तो किसी का संकेत बहुत मूल्यवान हो सकता है। जब मन अपने ही विचारों के जंगल में उलझा हो, तो किसी स्पष्ट दृष्टि वाले व्यक्ति की उपस्थिति भीतर एक शांत दरवाज़ा खोल सकती है।

इसलिए गुरु, विधि और सत्संग का अपमान करने की कोई आवश्यकता नहीं।

लेकिन उन्हें अंतिम सत्य बना लेने में खतरा है।

क्योंकि सत्य किसी व्यक्ति, स्थान, विधि या शब्द में कैद नहीं है।

वे संकेत हो सकते हैं।

वे द्वार हो सकते हैं।

वे तुम्हें भीतर मोड़ सकते हैं।

लेकिन वे स्वयं तुम्हारे स्थान पर देख नहीं सकते।

देखना तुम्हें ही होगा।

संकेत की आवश्यकता क्यों पड़ती है

मन बाहर देखने का आदी है। जन्म से ही उसकी दृष्टि बाहर की वस्तुओं, लोगों, घटनाओं और परिस्थितियों में लगी रहती है। उसे लगता है कि जो चाहिए, वह बाहर मिलेगा। सुख बाहर। प्रेम बाहर। सुरक्षा बाहर। सम्मान बाहर। और जब वह आध्यात्मिक होता है, तब भी शुरुआत में वह सत्य को बाहर ही खोजता है।

किसी विशेष गुरु में।

किसी विशेष ग्रंथ में।

किसी विशेष स्थान में।

किसी विशेष विधि में।

यह शुरुआत में स्वाभाविक है। क्योंकि मन को भीतर मुड़ना नहीं आता। वह स्वयं को देखने से बचता है। उसे विचार देखने के बजाय विचारों में उलझना आता है। उसे मौन को पहचानने के बजाय अनुभवों के पीछे भागना आता है।

ऐसे में कोई सच्चा मार्गदर्शक बहुत करुणापूर्वक कहता है — “थोड़ा रुको। बाहर मत दौड़ो। जो खोज रहे हो, पहले यह देखो कि खोज कौन रहा है।”

यह वाक्य ही दीपक बन सकता है।

गुरु का मूल्य यहीं है।

वह तुम्हें नया विश्वास देने नहीं आता।

वह तुम्हारी आँखें खोलने आता है।

जैसे कोई चंद्रमा की ओर इशारा करे। उंगली आवश्यक है, क्योंकि बिना संकेत के तुम शायद आकाश की ओर देखो ही नहीं। लेकिन यदि तुम उंगली को ही चंद्रमा मान लो, तो संकेत बंधन बन गया।

गुरु उंगली है।

सत्य चंद्रमा है।

और अंत में देखना तुम्हारी अपनी आँखों को है।

विधियाँ नाव की तरह हैं

ध्यान की विधियाँ, श्वास की सजगता, आत्म-पूछताछ, मौन में बैठना, नाम-स्मरण, सत्संग सुनना — ये सब नाव की तरह हो सकते हैं।

यदि नदी पार करनी हो, तो नाव उपयोगी है। बिना नाव के कठिनाई हो सकती है। नाव तुम्हें इस किनारे से उस किनारे तक ले जाने में सहायता कर सकती है। लेकिन नदी पार करने के बाद यदि कोई नाव को सिर पर उठाकर चलने लगे, तो वही नाव बोझ बन जाती है।

विधि का भी यही स्थान है।

विधि मन को थोड़ा स्थिर कर सकती है। वह तुम्हें देखने की आदत दे सकती है। वह ध्यान को बाहर से भीतर मोड़ सकती है। वह तुम्हें बार-बार याद दिला सकती है कि विचार तुम नहीं हो, भावनाएँ तुम नहीं हो, अनुभव तुम नहीं हो।

लेकिन विधि सत्य नहीं है।

विधि दिशा है।

विधि द्वार पर लाकर खड़ा कर सकती है।

अंदर प्रवेश सजगता में होता है।

यदि साधक विधि को पकड़ ले और कहे — “यही एकमात्र मार्ग है, यही अंतिम है, इसके बिना कोई नहीं देख सकता,” तो विधि जीवित संकेत से बदलकर मानसिक दीवार बन जाती है।

तुम विधि का उपयोग करो।

पर विधि को पहचान मत बना लो।

जब मार्गदर्शन निर्भरता बन जाता है

निर्भरता बहुत सूक्ष्म होती है।

साधक सोचता है कि वह समर्पित है, पर भीतर कभी-कभी वह अपनी देखने की शक्ति छोड़ देता है। वह कहता है — “मेरे गुरु ही जानते हैं। मैं कुछ नहीं जान सकता।” यह वाक्य बाहर से विनम्र लगता है, लेकिन यदि उसमें आत्म-जागरण की जगह अंधी निर्भरता है, तो वह खतरनाक है।

सच्ची विनम्रता यह नहीं कहती कि “मैं अंधा ही रहूँगा।”

सच्ची विनम्रता कहती है — “मैं अपने भ्रम को देखना चाहता हूँ।”

गुरु का आदर करो।

लेकिन अपनी जागरूकता को गुरु के चरणों में मत छोड़ दो।

गुरु तुम्हें तुम्हारी जागरूकता में लौटाने के लिए है, उससे दूर करने के लिए नहीं।

जब कोई साधक हर छोटी बात के लिए बाहर से अनुमति चाहता है, हर अनुभव की पुष्टि चाहता है, हर निर्णय के लिए संकेत चाहता है, तब धीरे-धीरे उसकी भीतर देखने की शक्ति कमजोर हो सकती है। वह स्वयं से डरने लगता है। वह मौन से नहीं, निर्देश से चलता है।

यह निर्भरता है।

और निर्भरता प्रेम नहीं है।

प्रेम खुला करता है।

निर्भरता बाँधती है।

सच्चा गुरु तुम्हें अपने पास बाँधना नहीं चाहेगा। वह तुम्हें तुम्हारे भीतर की स्वतंत्रता में खड़ा देखना चाहेगा। वह चाहेगा कि एक दिन तुम उसकी आँखों में नहीं, अपनी ही जागरूकता में सत्य को पहचानो।

“केवल मेरे गुरु के पास सत्य है”

मन को विशेषता पसंद है।

वह कहता है — “मेरा मार्ग श्रेष्ठ है।” “मेरे गुरु पूर्ण हैं।” “हमारी विधि ही अंतिम है।” “बाकी सब अधूरे हैं।”

यह धार्मिक मन का पुराना खेल है। आध्यात्मिकता में भी यह बहुत सूक्ष्म रूप से चल सकता है।

जब सत्य को किसी समूह, नाम, परंपरा, गुरु या संस्था की संपत्ति बना दिया जाता है, तब सत्य विचार बन जाता है। और विचार हमेशा विभाजन करता है। मेरा और तुम्हारा। सही और गलत। ऊँचा और नीचा। अपना और पराया।

सत्य किसी का निजी अधिकार नहीं है।

सूरज किसी घर की छत पर अलग से नहीं उगता।

आकाश किसी धर्म, देश, भाषा या गुरु-मंडल का नहीं होता।

जल प्यासे को देखता है, उसकी पहचान नहीं पूछता।

उसी तरह जागरूकता हर मनुष्य की मूल भूमि है। कोई गुरु इसे तुम्हें बाहर से नहीं दे सकता, क्योंकि यह पहले से तुम्हारे होने का आधार है। गुरु अधिक से अधिक इतना कर सकता है कि तुम्हारी दृष्टि को इस ओर मोड़ दे।

जो कहे — “सत्य केवल मेरे पास है,” उससे सावधान रहना।

जो कहे — “मेरी ओर मत देखो, उस ओर देखो जहाँ से तुम मुझे भी देख रहे हो,” वहाँ ठहरना।

शास्त्र: शब्दों का दर्पण

शास्त्र, ग्रंथ, वचन — ये भी अद्भुत दर्पण हो सकते हैं। किसी एक वाक्य से जीवन की दिशा बदल सकती है। कोई शब्द भीतर इतना गहरा उतर सकता है कि वर्षों की नींद टूटने लगे।

लेकिन शब्द सत्य नहीं हैं।

शब्द सत्य की ओर संकेत हैं।

“जल” शब्द प्यास नहीं बुझाता। जल को पीना पड़ता है। “मौन” शब्द मौन नहीं है। “जागरूकता” शब्द जागरूकता नहीं है।

कई साधक शब्दों के संग्राहक बन जाते हैं। उन्हें बहुत कुछ मालूम होता है। वे बड़े सुंदर वाक्य बोलते हैं। वे कई शिक्षाओं की तुलना कर सकते हैं। वे तर्क कर सकते हैं, उद्धरण दे सकते हैं, समझा सकते हैं।

पर भीतर क्या वे शांत हैं?

क्या वे स्वयं को देख रहे हैं?

क्या दुख उठते समय वे उस दुख को पकड़ते नहीं?

क्या अपमान के समय वे जागरूक रह पाते हैं?

यदि शब्द जीवन में नहीं उतरते, तो वे मन की सजावट बन जाते हैं।

शास्त्र का सम्मान करो।

लेकिन शब्दों से अपनी पहचान मत बनाओ।

शब्द नाव हैं।

मौन किनारा है।

सत्संग और शिविर: वातावरण की कृपा

कभी किसी शांत स्थान में बैठना, किसी जागे हुए व्यक्ति की उपस्थिति में रहना, साधकों के बीच मौन साझा करना — यह बहुत सहायक हो सकता है। मन का शोर थोड़ा बैठता है। भीतर की धूल नीचे आती है। जो बात अकेले कठिन लगती थी, वह सामूहिक शांति में सरल हो जाती है।

इसमें कृपा है।

स्थान भी सहायक हो सकता है।

बोधगया, हिमालय, नदी किनारा, मंदिर का प्रांगण, कोई शांत कमरा — ये सब मन को भीतर मुड़ने में सहायता कर सकते हैं।

लेकिन स्थान भी अंतिम नहीं है।

यदि शांति केवल स्थान पर निर्भर है, तो वह अभी बाहरी सहारे से बँधी है। यदि सत्संग में शांति है, लेकिन घर लौटते ही वही पुरानी बेहोशी है, तो निराश मत हो। यह भी देखने का अवसर है।

सत्संग में मिली शांति को पकड़ो मत।

उससे सीखो।

देखो कि उस शांति में क्या स्पष्ट था।

फिर वही देखने की कोमलता घर में लाओ, संबंधों में लाओ, बाजार में लाओ, काम में लाओ, अकेलेपन में लाओ।

सत्य केवल सभा में नहीं है।

सत्य श्वास में भी है।

चलने में भी है।

बर्तन धोने में भी है।

किसी की बात सुनते समय भी है।

वास्तविक गुरु-तत्त्व

बाहरी गुरु का कार्य तुम्हें भीतर के गुरु तक पहुँचाना है।

भीतर का गुरु कोई व्यक्ति नहीं है। वह तुम्हारी जागरूकता की मौन रोशनी है। वही देखती है कि विचार उठ रहा है। वही जानती है कि भय आया। वही पहचानती है कि इच्छा चल रही है। वही देख सकती है कि "मैं" भी एक विचार है।

बाहरी गुरु कहता है — "देखो।"

भीतर का गुरु देखता है।

बाहरी गुरु कहता है — "रुको।"

भीतर का गुरु मौन में ठहरता है।

बाहरी गुरु कहता है — "तुम वह हो जिसे तुम खोज रहे हो।"

भीतर का गुरु इस वाक्य को अनुभव में पहचानता है।

जब तक यह पहचान भीतर नहीं होती, तब तक शब्द उधार हैं। सुंदर हैं, उपयोगी हैं, लेकिन उधार हैं। जब भीतर देखने की अग्नि जलती है, तब वही वचन जीवित हो जाते हैं।

सच्चा गुरु तुम्हें अपने प्रति अंधा नहीं बनाता।

वह तुम्हें स्वयं के प्रति जाग्रत करता है।

मार्गदर्शक संकेत करता है, जागरूकता पहचानती है

मेरी दृष्टि में मार्गदर्शक का कार्य बहुत सरल है।

वह तुम्हें अपने पास रोकने नहीं आता।

वह तुम्हें तुम्हारी ही ओर लौटाने आता है।

वह कहता है — “जो मुझे सुन रहा है, पहले उसे जानो। जो विधि कर रहा है, उसे देखो। जो मुक्ति चाहता है, उसे पहचानो। जो कहता है ‘मैं अभी नहीं पहुँचा’, उसकी जड़ देखो।”

मार्गदर्शक संकेत कर सकता है।

पर पहचान तुम्हारी जागरूकता में ही होगी।

कोई तुम्हारे लिए भोजन चबा सकता है, पर तृप्ति तुम्हारे भीतर ही होगी। कोई तुम्हें जल दिखा सकता है, पर पीना तुम्हें होगा। कोई खिड़की खोल सकता है, पर आकाश तुम्हारी आँखों को ही देखना होगा।

इसलिए गुरु को बोझ मत बनाओ।

विधि को कैद मत बनाओ।

शास्त्र को दीवार मत बनाओ।

सत्संग को नशा मत बनाओ।

इन सबको प्रेम से लो, सम्मान से लो, कृतज्ञता से लो।

फिर उनके माध्यम से भीतर लौटो।

अनुकरण से देखना नहीं होता

साधक कई बार गुरु की भाषा, चाल, मौन, वस्त्र, शैली, यहाँ तक कि चेहरे की शांति तक की नकल करने लगता है। बाहर से वह बहुत आध्यात्मिक दिख सकता है। लेकिन अनुकरण से सत्य नहीं मिलता।

अनुकरण मन की प्रक्रिया है।

देखना मौन की प्रक्रिया है।

किसी जागे हुए व्यक्ति की सरलता देखकर तुम सरलता की नकल कर सकते हो। लेकिन नकल की हुई सरलता के भीतर भी चाह छिपी रहती है — “मैं भी वैसा दिखूँ।” सच्ची सरलता तब आती है जब भीतर का भार गिरता है।

किसी गुरु का मौन देखकर तुम कम बोल सकते हो। पर भीतर विचारों की भीड़ चलती रहे, तो बाहर का मौन केवल अभ्यास है। बुरा नहीं, पर अंतिम नहीं।

सत्य किसी रूप की नकल से नहीं आता।

सत्य रूपों के पीछे स्वयं को पहचानने से प्रकट होता है।

स्वतंत्रता का भय

कई साधक स्वतंत्र होने से डरते हैं।

निर्भरता में सुरक्षा है। कोई बताने वाला है। कोई निर्णय लेने वाला है। कोई अंतिम उत्तर देने वाला है। स्वतंत्रता में सीधा देखना पड़ता है। वहाँ बहाने कम हो जाते हैं।

इसलिए मन कई बार गुरु के पीछे छिप जाता है। विधि के पीछे छिप जाता है। परंपरा के पीछे छिप जाता है। वह कहता है — “मैं तो केवल अनुसरण कर रहा हूँ।”

लेकिन सत्य में कोई छिपने की जगह नहीं है।

तुम्हें अपने भीतर अकेले खड़ा होना होगा।

अकेला होने का अर्थ अलग होना नहीं है। इसका अर्थ है — उधार की आँखों से नहीं, अपनी जागरूकता से देखना।

यहीं से वास्तविक श्रद्धा जन्म लेती है। जो अंधी नहीं होती। जो निर्भर नहीं होती। जो प्रेम करती है, पर पकड़ती नहीं। जो सुनती है, पर भीतर जाँचती है। जो झुकती है, पर स्वयं को मिटाकर बेहोश नहीं होती।

अंतिम संकेत

गुरु का सम्मान करो।

विधि का उपयोग करो।

शास्त्र पढ़ो।

सत्संग में बैठो।

शांत स्थानों की कृपा लो।

लेकिन कहीं भी स्वयं को खो मत देना।

जो कुछ बाहर से मिले, उसे भीतर देखने का निमंत्रण बनाओ। यदि गुरु तुम्हें तुम्हारी जागरूकता से दूर कर रहा है, तो सावधान रहो। यदि विधि तुम्हें अधिक कठोर, अधिक भयभीत, अधिक निर्भर बना रही है, तो रुककर देखो। यदि शास्त्र तुम्हें विनम्र नहीं, केवल ज्ञानी दिखा रहे हैं, तो देखो। यदि सत्संग तुम्हें जीवन से भागने का साधन बन रहा है, तो देखो।

सत्य निर्भरता नहीं चाहता।

सत्य जागृति चाहता है।

एक दिन उंगली को छोड़कर चंद्रमा देखना होगा।

एक दिन नाव को किनारे पर छोड़ना होगा।

एक दिन शब्द मौन में विलीन होंगे।

एक दिन गुरु की ओर देखते-देखते तुम्हारी दृष्टि उस देखने वाले पर लौटेगी, जो गुरु को भी जान रहा है, विधि को भी जान रहा है, खोज को भी जान रहा है।

वहीं वास्तविक शुरुआत है।

अनुसरण का अंत।

देखने का आरंभ।

और उस देखने में तुम पाओगे — जिसे बाहर खोज रहे थे, वह भीतर प्रतीक्षा नहीं कर रहा था।

वह तो हमेशा से तुम्हारे देखने की रोशनी ही था।

अध्याय ६

खोज: एक सूक्ष्म पलायन

✦

आध्यात्मिक खोज हमेशा सत्य की प्यास से ही जन्म ले, ऐसा आवश्यक नहीं है।

कभी-कभी वह दुख से भागने की एक सुंदर विधि भी बन जाती है।

यह बात बहुत सावधानी से सुननी है। यहाँ खोज की निंदा नहीं हो रही। यहाँ साधना को छोटा नहीं किया जा रहा। यहाँ केवल उस सूक्ष्म जगह को प्रकाश में लाया जा रहा है जहाँ मन अपनी पीड़ा से बचने के लिए आध्यात्मिक भाषा का उपयोग करने लगता है।

मन बहुत चतुर है।

वह संसार से भागकर भी स्वयं से नहीं भाग पाता।

वह घर छोड़ सकता है, पर अपनी छाया साथ ले जाता है।

वह संबंधों से दूर जा सकता है, पर भीतर की चोटें उसके साथ चलती हैं।

वह मौन में बैठ सकता है, पर भीतर अनकहे शब्द अब भी घूमते रहते हैं।

वह कह सकता है — “मुझे मुक्ति चाहिए,” लेकिन भीतर कहीं वह केवल इतना चाहता होता है — “मुझे इस दर्द से बचा लो।”

और दर्द से बचने की यह चाह, यदि देखी न जाए, तो आध्यात्मिक खोज एक सूक्ष्म पलायन बन जाती है।

जब ध्यान भागने का स्थान बन जाता है

ध्यान बहुत सुंदर है। वह भीतर लौटने का द्वार हो सकता है। वह मन की धूल को बैठा सकता है। वह तुम्हें उस मौन से परिचित करा सकता है जो विचारों से पहले है।

लेकिन वही ध्यान यदि जीवन से भागने का तरीका बन जाए, तो वह पूरी तरह जागरण की दिशा में नहीं ले जाता।

कोई संबंध टूटा। भीतर दुख उठा। मन ने कहा — “मुझे अब केवल ध्यान करना है।”

किसी ने अपमान किया। भीतर चोट हुई। मन ने कहा — “ये सब लोग अज्ञानी हैं। मुझे इनसे दूर रहना है।”

जिम्मेदारी भारी लगी। मन ने कहा — “मैं संसार के लिए नहीं बना। मैं आध्यात्मिक हूँ।”

यहाँ सावधानी चाहिए।

कई बार जिसे हम वैराग्य कहते हैं, वह केवल आहत मन की दीवार होती है। कई बार जिसे हम मौन कहते हैं, वह अनकहे दर्द का दबाव होता है। कई बार जिसे हम संसार से ऊबना कहते हैं, वह वास्तव में संबंधों में असफलता, प्रेम में चोट, या जिम्मेदारी से थकान होती है।

सच्चा वैराग्य जीवन से नफरत नहीं करता।

वह केवल झूठी पकड़ को देखता है।

सच्चा मौन लोगों से भागता नहीं।

वह भीतर की प्रतिक्रिया को देखता है।

सच्ची साधना जीवन को छोड़ने से पहले जीवन को ईमानदारी से देखती है।

आध्यात्मिक भाषा में छिपा हुआ दर्द

मन दर्द को सीधे देखना नहीं चाहता। उसे डर लगता है कि यदि उसने भीतर की चोट को छुआ, तो वह टूट जाएगा। इसलिए वह जल्दी से कोई बड़ा विचार पकड़ लेता है।

“सब माया है।”

“कोई किसी का नहीं।”

“मैं शरीर नहीं हूँ।”

“मैं मन नहीं हूँ।”

“सब कुछ स्वप्न है।”

ये वाक्य सत्य की ओर संकेत हो सकते हैं। लेकिन यदि इन्हें दर्द से बचने के लिए उपयोग किया जाए, तो वे जीवित सत्य नहीं, मानसिक दीवार बन जाते हैं।

यदि किसी ने तुम्हें चोट दी और तुम तुरंत कह दो — “कोई चोट खा ही नहीं सकता, क्योंकि मैं तो चेतना हूँ” — तो यह संभव है कि तुमने सत्य नहीं पहचाना, केवल दर्द को दबा दिया।

हाँ, अंतिम दृष्टि से तुम चेतना हो।

पर अभी शरीर काँप रहा है।

हृदय भारी है।

आँखें भीग रही हैं।

अंदर कोई बच्चा अकेला महसूस कर रहा है।

क्या उसे सुनोगे?

या उस पर दर्शन रख दोगे?

यहाँ करुणा चाहिए।

सत्य का अर्थ दर्द को झुठलाना नहीं है। सत्य का अर्थ है — दर्द को भी उसी जागरूकता में जगह देना, जिसमें सुख को जगह मिलती है। यदि जागरूकता विशाल है, तो वह आँसू से क्यों डरेगी? यदि तुम आकाश हो, तो बादल को आने से क्यों रोकोगे?

“जब मैं जागूँगा, सब ठीक हो जाएगा”

साधक के भीतर एक और सुंदर भ्रम होता है — “जब मैं जाग जाऊँगा, तब सब ठीक हो जाएगा।”

तब मेरे संबंध ठीक होंगे।

तब डर समाप्त होगा।

तब दुख नहीं रहेगा।

तब शरीर हमेशा शांत रहेगा।

तब कोई मुझे चोट नहीं पहुँचा सकेगा।

तब जीवन में केवल प्रेम, आनंद और सहजता होगी।

यह कल्पना मन को बहुत आकर्षित करती है। वह जागरण को एक जादुई औषधि बना देता है, जैसे एक दिन कुछ घटेगा और मनुष्य होने की सारी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाएँगी।

लेकिन ऐसा नहीं है।

जागरण जीवन से भागने की दवा नहीं है।

जागरण जीवन को जैसे है, वैसे देखने की स्पष्टता है।

शरीर तब भी थक सकता है।

रिश्तों में संवाद तब भी आवश्यक होगा।

दुख की लहरें तब भी आ सकती हैं।

पुरानी स्मृतियाँ उठ सकती हैं।

किसी प्रिय का जाना तब भी हृदय को छू सकता है।

अंतर यह है कि अब इन सबके साथ पहचान पहले जैसी कठोर नहीं रहती। दुख उठता है, पर "मैं दुख हूँ" यह पकड़ ढीली होती है। भय उठता है, पर "मैं भय हूँ" यह भ्रम हल्का होता है। चोट लगती है, पर उसके चारों ओर कहानी उतनी लंबी नहीं बनती।

जागरण मानवता को नकारता नहीं।

वह मानवता को प्रकाश देता है।

भविष्य का आश्रय

"एक दिन सब ठीक होगा" — यह वाक्य मन का आश्रय है।

यह उसे अभी के दर्द से थोड़ा आराम देता है। पर यदि यह आश्रय बहुत मजबूत हो जाए, तो मन वर्तमान से मिलना बंद कर देता है। वह हर दर्द को भविष्य के नाम पर टाल देता है।

अभी अकेलापन है — बाद में मुक्ति मिलेगी।

अभी क्रोध है — बाद में शांति स्थायी होगी।

अभी डर है — बाद में मैं निर्भय हो जाऊँगा।

अभी प्रेम में चोट है — बाद में मैं आसक्ति से मुक्त हो जाऊँगा।

इस तरह साधक जीवन को बाद में जीने लगता है। वह वर्तमान को केवल प्रतीक्षा-कक्ष बना देता है। जैसे स्टेशन पर कोई यात्री ट्रेन का इंतज़ार करते हुए आसपास के आकाश, हवा, लोगों, धूप, सबको भूल जाए। उसे केवल आने वाली ट्रेन दिखती है। पर कभी-कभी पूरी यात्रा इसी प्रतीक्षा में खो जाती है।

सत्य भविष्य की ट्रेन नहीं है।

सत्य प्रतीक्षा करते हुए तुम्हारी साँस में भी है।

दुख के बीच तुम्हारी जागरूकता में भी है।

रोते हुए हृदय के पीछे मौन में भी है।

तुम जहाँ सत्य से बच रहे हो, वही स्थान सत्य का द्वार हो सकता है।

दर्द को अभी मिलना

यदि भीतर दर्द है, तो उसे अभी मिलो।

कल नहीं।

जागरण के बाद नहीं।

पूरी तरह समझदार हो जाने के बाद नहीं।

अभी।

दर्द को मिलना कोई नाटक नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि तुम उसमें डूब जाओ, कहानी बनाओ, स्वयं को पीड़ित सिद्ध करो। इसका अर्थ है — बहुत शांत होकर यह स्वीकार करना कि इस समय भीतर कुछ है जो देखे जाने की प्रतीक्षा कर रहा है।

बैठो।

शरीर को महसूस करो।

कहाँ कसाव है?

गले में?

छाती में?

पेट में?

आँखों के पीछे?

हाथों में?

उस स्थान को थोड़ा नरम ध्यान दो। कोई मंत्र मत थोपो। कोई निष्कर्ष मत बनाओ। मत कहो — "यह कर्म है।" मत कहो — "यह माया है।" मत कहो — "मुझे इससे ऊपर उठना है।"

बस कहो — "मैं देख रहा हूँ।"

और फिर उस देखने में ठहरो।

दर्द धीरे-धीरे अपनी कहानी खोल सकता है। वह कह सकता है — "मुझे प्रेम चाहिए था।" "मुझे स्वीकार नहीं किया गया।" "मुझे डर है।" "मैं अकेला हूँ।" "मुझे छोड़ा गया।"

इन आवाज़ों को सुनो।

इनसे सहमत होना जरूरी नहीं।

इन्हें दबाना भी जरूरी नहीं।

बस इन्हें जागरूकता की गोद में आने दो।

अवधारणा नहीं, उपस्थिति

साधक कई बार अपने दर्द पर विचारों की चादर डाल देता है। वह बहुत सुंदर बातें बोलता है, लेकिन भीतर उसका हृदय अब भी बंद रहता है।

सच्ची साधना अवधारणा से उपस्थिति की ओर ले जाती है।

अवधारणा कहती है — "दुख असत्य है।"

उपस्थिति कहती है — "दुख उठ रहा है, मैं इसे देखता हूँ।"

अवधारणा कहती है — "मैं देह नहीं हूँ।"

उपस्थिति कहती है — “शरीर में कसाव है, मैं इसके साथ हूँ।”

अवधारणा कहती है — “सब एक है।”

उपस्थिति कहती है — “अभी भीतर अलगाव की पीड़ा उठ रही है, मैं इसे प्रकाश में आने देता हूँ।”

देखो, उपस्थिति अधिक ईमानदार है।

वह सत्य को छोटा नहीं करती। वह मानव अनुभव को भी अस्वीकार नहीं करती। वह जानती है कि अंतिम रूप से आकाश बादलों से छूता नहीं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि बादल को देखना बंद कर दिया जाए।

संबंधों से भागना और स्वयं से मिलना

संबंध साधना की बड़ी भूमि हैं।

घर, परिवार, साथी, मित्र, माता-पिता, संतान, सहकर्मी — ये सब केवल लोग नहीं हैं। ये दर्पण हैं। इनके सामने हमारा अहंकार, हमारा भय, हमारी अपेक्षा, हमारी असुरक्षा, हमारा प्रेम, सब प्रकट होता है।

इसलिए संबंधों से भागना आसान है।

कह देना आसान है — “मुझे अकेले रहना है। लोग मेरी शांति भंग करते हैं।”

कभी अकेलापन आवश्यक हो सकता है। मौन का समय भी आवश्यक है। पर यदि अकेलापन केवल इसलिए चुना गया है कि कोई तुम्हारी छिपी प्रतिक्रिया को न छुए, तो यह स्वतंत्रता नहीं, बचाव है।

जो व्यक्ति तुम्हें क्रोधित करता है, वह तुम्हें तुम्हारा क्रोध दिखा रहा है।

जो तुम्हें अस्वीकार करता है, वह तुम्हें तुम्हारे भीतर की अस्वीकृति का भय दिखा रहा है।

जो तुम्हें बाँधता हुआ लगता है, वह तुम्हारी पकड़ को उजागर कर रहा है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हर संबंध में रहना है। कई बार दूरी भी करुणा होती है। कई बार सीमा बनाना आवश्यक है। पर भीतर यह देखना आवश्यक है कि तुम स्पष्टता से हट रहे हो या डर से भाग रहे हो।

जिम्मेदारी भी साधना है

कई साधक जिम्मेदारी को संसारिक कहकर छोटा कर देते हैं। उन्हें लगता है कि आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है — जिम्मेदारियों से ऊपर उठ जाना।

लेकिन जीवन में जो तुम्हारे सामने रखा है, उसे सजगता से निभाना भी साधना है।

भोजन कमाना।

परिवार से बात करना।

शरीर की देखभाल करना।

किसी काम को ईमानदारी से पूरा करना।

किसी को स्पष्ट उत्तर देना।

पैसे के प्रति जागरूक होना।

गलती स्वीकार करना।

ये सब भी जागरूकता की भूमि हैं।

यदि ध्यान में तुम साक्षी हो, पर व्यवहार में बेहोश हो, तो देखना अभी पूरा नहीं हुआ। यदि मौन में तुम शांत हो, पर जिम्मेदारी आते ही चिड़चिड़े हो जाते हो, तो यह दोष नहीं है — यह दर्पण है।

जीवन तुम्हारे विरोध में नहीं है।

जीवन बार-बार तुम्हें दिखा रहा है कि कहाँ अभी भी पहचान बची है।

सत्य सामान्य जीवन के विरुद्ध नहीं

अद्वैत का अर्थ जीवन का निषेध नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं कि संबंध झूठे हैं, इसलिए प्रेम की आवश्यकता नहीं। शरीर माया है, इसलिए स्वास्थ्य की परवाह नहीं। संसार सपना है, इसलिए जिम्मेदारी नहीं। मन विचार है, इसलिए किसी की पीड़ा सुननी नहीं।

यह आधी समझ है।

और आधी समझ कई बार खतरनाक होती है।

सत्य जीवन के विरुद्ध नहीं है। सत्य जीवन को उसी में प्रकाशित करता है। जैसे सूरज फूल पर भी चमकता है, काँटे पर भी, नदी पर भी, पत्थर पर भी। वह किसी को अस्वीकार नहीं करता।

जागरूकता भी ऐसी ही है।

वह ध्यान-कक्ष में भी है।

रसोई में भी है।

बाजार में भी है।

अस्पताल में भी है।

प्रेम में भी है।

विछोह में भी है।

तुम्हारी आध्यात्मिकता यदि जीवन के कुछ हिस्सों को स्वीकार करती है और कुछ से भागती है, तो वह अभी चयन कर रही है। साक्षीभाव चयन से गहरा है। वह सबको देखता है।

पलायन को देखना ही मुक्ति की शुरुआत है

यदि तुमने देखा कि तुम्हारी खोज में पलायन है, तो स्वयं को दोष मत दो।

यह देखना ही कृपा है।

बहुत लोग पूरी उम्र भागते रहते हैं और इसे साधना समझते रहते हैं। यदि तुम्हें दिख गया कि तुम दुख से बचने के लिए जागरण खोज रहे थे, तो यह असफलता नहीं है। यह ईमानदारी का आरंभ है।

अब खोज को छोड़ना नहीं।

उसकी जड़ को देखना।

ध्यान छोड़ना नहीं।

ध्यान को ईमानदार बनाना।

गुरु से दूर भागना नहीं।

गुरु के संकेत को भीतर लागू करना।

शास्त्र फेंकना नहीं।

शब्दों से जीवन को ढकना बंद करना।

साधना अब पलायन न रहे; वह साक्षीभाव बन जाए।

यही परिवर्तन है।

अभी के सामने बैठना

एक क्षण के लिए रुक जाओ।

अपने भीतर पूछो —

मैं किससे भाग रहा हूँ?

कौन-सी भावना है जिसे मैं आध्यात्मिक शब्दों से ढक देता हूँ?

कौन-सा संबंध है जिसे मैं माया कहकर देखने से बचता हूँ?

कौन-सी जिम्मेदारी है जिसे मैं साधना के नाम पर टालता हूँ?

कौन-सा दर्द है जिसे मैं जागरण के बाद ठीक करना चाहता हूँ?

इन प्रश्नों को कठोरता से मत पूछो।

इनमें करुणा रखो।

जैसे कोई दीपक अंधेरे कमरे में रखा जाता है। दीपक अंधेरे को अपमानित नहीं करता। वह बस प्रकाश देता है। तुम भी अपने भीतर दीपक की तरह बैठो। जो छिपा है, उसे दिखने दो।

दर्द आएगा, तो आने दो।

शर्म आएगी, तो आने दो।

डर आएगा, तो आने दो।

आँसू आएँगे, तो आने दो।

इनमें से कोई भी तुम्हें छोटा नहीं करता।

वे सब जागरूकता में उठी लहरें हैं।

तुम लहर से भागते रहे, इसलिए वह बड़ी लगती रही। अब उसे देखो। वह भी समुद्र से अलग नहीं है।

अंतिम विराम

सत्य जीवन से भागने में नहीं मिलता।

सत्य जीवन को ईमानदारी से देखने में प्रकट होता है।

ध्यान में बैठो, पर अपने आँसू से मत भागो।

मौन में जाओ, पर संबंधों की चोट को झुठलाओ मत।

साक्षीभाव में ठहरो, पर जिम्मेदारी से मुँह मत मोड़ो।

जागरण को भविष्य का आश्रय मत बनाओ।

उसे अभी के प्रकाश में पहचानो।

जिस दर्द से तुम बच रहे हो, वही तुम्हें तुम्हारी पकड़ दिखा सकता है।

जिस संबंध से तुम भाग रहे हो, वही तुम्हें तुम्हारा भय दिखा सकता है।

जिस जिम्मेदारी से तुम थकते हो, वही तुम्हें तुम्हारी पहचान का भार दिखा सकती है।

जीवन शत्रु नहीं है।

जीवन गुरु है।

हर क्षण कह रहा है — “यहाँ देखो।”

और जब तुम सचमुच यहाँ देखते हो, बिना भागे, बिना ढके, बिना सजाए, तब धीरे-धीरे स्पष्ट होता है —

मुक्ति जीवन से बाहर नहीं है।

मुक्ति इसी जीवन को जागरूकता में देखने की कोमल कला है।

जो भागना बंद करता है, वही पहली बार घर लौटता है।

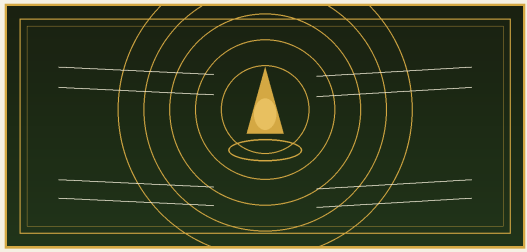

चित्र: दीपक और धुंध — पलायन नहीं, प्रकाश में देखना।

अध्याय ७

जब खोज शांत होने लगती है

✦

एक समय ऐसा आता है जब साधक थक जाता है।

यह थकान शरीर की नहीं होती। यह साधारण आलस्य भी नहीं होता। यह उस गहरी दौड़ की थकान होती है जिसमें मन वर्षों से लगा हुआ था — समझने की दौड़, पाने की दौड़, बदलने की दौड़, मुक्त होने की दौड़।

बहुत कुछ पढ़ लिया।

बहुत कुछ सुन लिया।

बहुत अभ्यास कर लिया।

कभी शांति मिली, फिर खो गई।

कभी आनंद आया, फिर चला गया।

कभी लगा कि अब बात समझ में आ रही है, फिर कोई पुराना डर, पुराना क्रोध, पुराना दुख लौट आया।

फिर मन ने कहा — “अभी नहीं। थोड़ा और। कोई और विधि। कोई और गुरु। कोई और अनुभव। कोई और उत्तर।”

और साधक फिर चल पड़ा।

लेकिन एक दिन भीतर कुछ बहुत शांत होकर कहता है — “अब बस।”

यह “अब बस” हार नहीं है।

यह दरवाज़ा हो सकता है।

पवित्र थकान

हर थकान बुरी नहीं होती।

कुछ थकानें जीवन को अंधकार में ले जाती हैं। वे निराशा बन जाती हैं, बंद हो जाना बन जाती हैं, भीतर की कठोरता बन जाती हैं। लेकिन एक थकान ऐसी भी होती है जो मन की व्यर्थ दौड़ को उजागर करती है। वह तुम्हें तोड़ती नहीं; वह तुम्हें झुकाती है।

यह पवित्र थकान है।

जब साधक देखता है कि वह जितना भाग रहा था, उतना ही अपने से दूर महसूस कर रहा था। जितना पकड़ रहा था, उतना ही भीतर तनाव बढ़ रहा था। जितना पाने की कोशिश कर रहा था, उतना ही कमी की भावना गहरी हो रही थी।

तब एक क्षण आता है जहाँ दौड़ अपने आप धीमी पड़ती है।

जैसे बहुत दूर उड़ता हुआ पक्षी अंततः अपने घोंसले की याद में लौटता है। वह आकाश से नाराज़ नहीं होता। वह अपनी उड़ान को असफल नहीं मानता। वह बस थक गया है। अब उसे कहीं और नहीं जाना। उसे केवल लौटना है।

साधक की पवित्र थकान भी ऐसी ही है।

वह कहती है — “मैंने बहुत खोज लिया। अब मैं थोड़ा बैठना चाहता हूँ।”

और इसी बैठने में कृपा है।

प्रयास की सीमा

प्रयास जीवन में उपयोगी है। खेत बोना हो, घर बनाना हो, कला सीखनी हो, शरीर को स्वस्थ रखना हो — प्रयास आवश्यक है। लेकिन सत्य को प्रयास से पकड़ने की कोशिश, हवा को मुट्ठी में बंद करने जैसी है।

मुट्ठी जितनी कसती है, हवा उतनी ही अनुपस्थित लगती है।

हाथ खुलते ही पता चलता है — हवा कभी गई ही नहीं थी।

साधक बहुत बार सत्य को पकड़ना चाहता है। वह ध्यान में भी पकड़ता है। मौन में भी पकड़ता है। गुरु के शब्दों को भी पकड़ता है। अनुभव को भी पकड़ता है। यहाँ तक कि “छोड़ना” भी पकड़ बन जाता है। वह कहता है — “मुझे सब छोड़ना है।” और इस “छोड़ने” को भी उपलब्धि बना लेता है।

देखो, मन कितना सूक्ष्म है।

वह त्याग को भी अपना आभूषण बना सकता है।

वह मौन को भी अपनी पहचान बना सकता है।

वह समर्पण को भी प्रयास बना सकता है।

इसलिए एक दिन प्रयास की सीमा देखनी पड़ती है। यह नहीं कि प्रयास गलत है। पर जहाँ प्रयास तुम्हें देखने के बजाय बनने में उलझा रहा है, वहाँ रुकना आवश्यक है।

रुकना निष्क्रियता नहीं है।

रुकना जागना है।

न जानने की सुंदरता

मन जानना चाहता है।

वह हर बात को समझना चाहता है। हर अनुभव का अर्थ, हर दर्द का कारण, हर घटना की व्याख्या, हर अवस्था का आध्यात्मिक स्थान। उसे लगता है कि यदि उसने सब समझ लिया, तो वह सुरक्षित हो जाएगा।

लेकिन जीवन मन की पकड़ से बड़ा है।

सत्य विचार की पकड़ से भी बड़ा है।

कभी-कभी सबसे गहरी प्रार्थना यह नहीं होती कि "मुझे अंतिम उत्तर दो।" कभी-कभी सबसे गहरी प्रार्थना होती है — "मैं न जानने के लिए तैयार हूँ।"

न जानना अज्ञान नहीं है।

यह मन की झूठी निश्चितता से मुक्त होना है।

जब तुम कहते हो — "मैं नहीं जानता," और यह वाक्य निराशा से नहीं, खुलेपन से उठता है, तब भीतर एक अद्भुत नरमी आती है। अब मन को तुरंत निर्णय नहीं करना। तुरंत निष्कर्ष नहीं बनाना। तुरंत किसी अनुभव पर मुहर नहीं लगानी। अब वह केवल देख सकता है।

न जानने में एक खाली स्थान खुलता है।

और उसी खाली स्थान में सत्य की सुगंध आती है।

जैसे भरा हुआ कटोरा नया जल नहीं ले सकता। मन यदि अपने निष्कर्षों से भरा है, तो वह जीवित देखना नहीं जान सकता। पर जब कटोरा खाली होता है, तब आकाश भी उसमें प्रतिबिंबित हो सकता है।

समझने से अधिक देखना

साधक बहुत बार सत्य को समझना चाहता है। वह प्रश्न पूछता है, उत्तर सुनता है, फिर अगले प्रश्न पर चला जाता है। वह अपनी बुद्धि को शांत करने की कोशिश करता है। लेकिन बुद्धि का स्वभाव है प्रश्न बनाना। वह एक उत्तर से कुछ देर संतुष्ट होती है, फिर नया प्रश्न उठता है।

सत्य को केवल समझने से नहीं जाना जाता।

सत्य को देखने से पहचाना जाता है।

समझ मन का कार्य है।

देखना जागरूकता की सुगंध है।

समझ कहती है — “अब मुझे सिद्धांत समझ में आ गया।”

देखना कहता है — “अभी यह विचार उठ रहा है।”

समझ कहती है — “मैं शरीर नहीं हूँ।”

देखना कहता है — “अभी शरीर में भय की लहर उठी है, और मैं इसे देख रहा हूँ।”

समझ कहती है — “सब एक है।”

देखना कहता है — “अभी मन अलगाव महसूस कर रहा है, और यह भी दिखाई दे रहा है।”

देखना अधिक ईमानदार है।

वह किसी आध्यात्मिक निष्कर्ष के पीछे नहीं छिपता।

वह अभी के अनुभव से सीधा मिलता है।

रुकना, पर बलपूर्वक नहीं

मन को बलपूर्वक रोकना संभव नहीं। जो उसे जबरदस्ती रोकता है, वह भीतर एक और संघर्ष पैदा करता है। विचारों से लड़ना विचारों को ही केंद्र बना देता है। मन को शांत करने की हिंसक कोशिश मन को और महत्त्व दे देती है।

तुम मन को आदेश दे सकते हो — “चुप हो जाओ।”

लेकिन जो आदेश दे रहा है, वह भी मन की ही एक आवाज़ हो सकती है।

इसलिए रुकना बल से नहीं आता।

रुकना समझ से आता है।

जब बच्चा आग को खिलौना समझता है, तो उसे बार-बार पकड़ना चाहता है। पर एक बार यदि वह सचमुच समझ ले कि यह जलाती है, तो हाथ अपने आप पीछे हट जाता है। उसे अलग से त्याग नहीं करना पड़ता।

उसी तरह जब साधक देख लेता है कि हर खोज अंत में उसी कमी की भावना को मजबूत कर रही है, तो खोज की गति अपने आप नरम पड़ती है। जब वह देख लेता है कि हर अनुभव को पकड़ना फिर भय बन जाता है, तो पकड़ ढीली पड़ती है। जब वह देख लेता है कि भविष्य की हर कल्पना उसे वर्तमान से दूर करती है, तो वर्तमान की ओर लौटना सहज हो जाता है।

यह रोकना नहीं है।

यह देखना है।

और देखने में मन धीरे-धीरे अपनी अनावश्यक दौड़ खो देता है।

समर्पण का वास्तविक अर्थ

समर्पण कोई धार्मिक मुद्रा नहीं है। यह हार मानना भी नहीं है। यह जीवन से पराजित होकर बैठ जाना नहीं है।

समर्पण का अर्थ है — मन की उस झूठी पकड़ को पहचानना जो हर चीज़ को नियंत्रित करना चाहती थी।

जो कहती थी — “मुझे ऐसा अनुभव चाहिए।”

“मुझे ऐसा जीवन चाहिए।”

“मुझे ऐसा जागरण चाहिए।”

“मुझे ऐसा परिणाम चाहिए।”

समर्पण तब शुरू होता है जब यह देखा जाता है कि जीवन हमारी मानसिक योजना से बहुत विशाल है। जागरूकता किसी योजना में नहीं बँधती। सत्य को मन की शर्तों पर नहीं बुलाया जा सकता।

समर्पण में एक आंतरिक झुकाव है।

जैसे नदी समुद्र के सामने झुकती नहीं, बहते-बहते समुद्र में विलीन हो जाती है। उसे समुद्र को जीतना नहीं पड़ता। उसे केवल अपना बहना पूरा होने देना पड़ता है।

साधक भी एक दिन ऐसे ही थककर बहना छोड़ देता है।

और देखता है — मैं जिस समुद्र को खोज रहा था, उसी जल से बना था।

सरल उपस्थिति में विश्राम

अब, इसी क्षण, कुछ भी विशेष मत करो।

शरीर जहाँ है, उसे वहीं रहने दो।

श्वास जैसी है, उसे वैसी ही रहने दो।

मन में जो विचार हैं, उन्हें अभी ठीक करने मत जाओ।

भावना जैसी है, उसे बदलने की जल्दी मत करो।

बस इतना देखो — यह सब दिखाई दे रहा है।

शरीर का अनुभव दिखाई दे रहा है।

श्वास का आना-जाना दिखाई दे रहा है।

विचार उठते हुए दिखाई दे रहे हैं।

शायद कोई बेचैनी भी दिखाई दे रही है।

शायद कोई शांति भी दिखाई दे रही है।

जो यह सब देख रहा है, उसे बुलाना नहीं पड़ा।

वह पहले से है।

तुम उसे बना नहीं रहे।

तुम केवल उसमें विश्राम करना सीख रहे हो।

यह विश्राम आलस्य नहीं है। यह सबसे गहरी सजगता है। इसमें मन को पकड़ना नहीं है, पर बेहोश भी नहीं होना है। इसमें जीवन को छोड़ना नहीं है, पर उससे चिपकना भी नहीं है।

बस होना है।

जैसे आकाश होता है।

जैसे समुद्र अपनी गहराई में होता है, चाहे सतह पर लहरें उठें।

“मैं हूँ” की मौन सुगंध

हर अनुभव से पहले एक बहुत सरल अनुभूति है — “मैं हूँ।”

यह कोई विचार नहीं। यह कोई वाक्य नहीं। यह कोई दार्शनिक निष्कर्ष नहीं। यह तुम्हारे होने की सीधी सुगंध है।

विचार कहते हैं — “मैं ऐसा हूँ।”

स्मृतियाँ कहती हैं — “मैं वैसा था।”

कल्पनाएँ कहती हैं — “मैं वैसा बनूँगा।”

पर इन सबके नीचे, बहुत शांत, बहुत सरल, एक मौन उपस्थिति है — “मैं हूँ।”

इस “मैं हूँ” को पकड़ना नहीं है।

इस पर विचार नहीं करना है।

इसे किसी विशेष अनुभव में बदलना नहीं है।

बस इसमें थोड़ा ठहरना है।

जैसे कोई थका हुआ यात्री वृक्ष की छाया में बैठता है। वह छाया को समझने नहीं बैठता। वह उसमें विश्राम करता है।

ऐसे ही इस मौन “मैं हूँ” में विश्राम करो।

न कोई उपलब्धि।

न कोई दावा।

न कोई घोषणा।

सिर्फ होना।

खोज का मौन होना

जब खोज शांत होने लगती है, तो बाहर से शायद कुछ विशेष न दिखे। तुम वही व्यक्ति दिखते हो। वही घर, वही काम, वही शरीर, वही संबंध, वही दुनिया। लेकिन भीतर एक भारीपन कम होने लगता है।

अब हर क्षण को मंज़िल तक पहुँचने की सीढ़ी नहीं बनाना।

अब हर अनुभव को मापना नहीं।

अब हर ध्यान के बाद परिणाम जाँचना नहीं।

अब हर बेचैनी को असफलता मानना नहीं।

अब हर शांति को पकड़ना नहीं।

भीतर एक कोमलता आती है।

जैसे वर्षों से बंद मुट्ठी धीरे-धीरे खुल रही हो।

और खुली हुई हथेली में कुछ पकड़ा नहीं जाता, पर सब स्पर्श हो सकता है।

यही खोज का मौन होना है।

साधक समाप्त करने की वस्तु नहीं है। वह बस अपने भार से थककर बैठ जाता है। और जब वह बैठता है, तब पहली बार उसे दिखाई देता है कि जिस घर की खोज में वह दूर-दूर घूम रहा था, वह उसके अपने होने में ही था।

अंतिम विराम

थकान से डरो मत।

यदि तुम खोज से थक गए हो, तो यह जरूरी नहीं कि तुम असफल हो गए।

हो सकता है तुम पहली बार ईमानदार हुए हो।

हो सकता है मन की यात्रा अपनी सीमा पर आ गई हो।

हो सकता है अब तुम्हें कोई नया उत्तर नहीं, केवल मौन चाहिए।

इस थकान को सम्मान दो।

इसमें बैठो।

इसे आध्यात्मिक पराजय मत कहो।

कई बार यही थकान कृपा का रूप होती है। यह मन की दौड़ को रोकती नहीं, बस उसकी निरर्थकता दिखा देती है। और जो निरर्थक दिख जाता है, वह धीरे-धीरे छूटने लगता है।

अब कुछ पाने की जल्दी मत करो।

कुछ बनने की कोशिश मत करो।

कुछ सिद्ध मत करो।

बस थोड़ा विश्राम करो।

जो जागरूक है, वह यहाँ है।

जो देख रहा है, वह यहाँ है।

जो खोज से पहले था, खोज के दौरान था, और खोज शांत होने पर भी है — वही तुम्हारा सत्य है।

पक्षी घोंसले में लौट आया है।

समुद्र ने लहर को वापस नहीं बुलाया; लहर ने बस अपनी थकान में जाना कि वह कभी समुद्र से अलग नहीं थी।

अब ठहरो।

यहीं।

इसी श्वास में।

इसी मौन में।

इसी सरल होने में।

चित्र: थका हुआ पक्षी घर लौटता है — खोज का मौन होना।

अध्याय ८

साधक को कौन जान रहा है?

✦

अब तक हमने साधक को कई दिशाओं से देखा।

वह अधूरेपन की भावना से जन्म लेता है। वह विचारों, स्मृतियों, इच्छाओं और डर से बनता है। वह अनुभवों को पकड़ता है। वह गुरु, विधि और भविष्य में सहारा खोजता है। वह कभी सत्य की प्यास से चलता है, और कभी दर्द से बचने के लिए भी चलता है।

अब एक बहुत सरल, बहुत सीधा प्रश्न सामने आता है —

जो यह सब देख रहा है, वह कौन है?

साधक को कौन जान रहा है?

यह प्रश्न किसी दर्शन की शुरुआत नहीं है। यह विचारों की बहस नहीं है। यह कोई बौद्धिक पहेली नहीं है। यह तुम्हें तुम्हारे अपने अनुभव में लौटाने का निमंत्रण है।

इसे जल्दी से उत्तर देने की कोशिश मत करना।

इस प्रश्न को भीतर गिरने देना।

जैसे शांत झील में एक छोटा-सा पत्थर गिरता है, और उसके गोल घेरे धीरे-धीरे फैलते हैं। उसी तरह यह प्रश्न भी भीतर फैल सकता है।

“मैं मुक्त कैसे होऊँ?” इस प्रश्न से थोड़ा पीछे हटो।

“मुक्त होना कौन चाहता है?” यहाँ से देखना शुरू होता है।

दृष्टि को वापस मोड़ना

मन बाहर की ओर देखता है।

उसे कोई लक्ष्य चाहिए। कोई अनुभव चाहिए। कोई अवस्था चाहिए। कोई उत्तर चाहिए। वह हमेशा किसी वस्तु की ओर बढ़ता है — बाहर की वस्तु, भीतर की अवस्था, भविष्य की कल्पना, या मुक्ति का विचार।

लेकिन आत्म-जांच में दृष्टि वस्तु से हटकर देखने वाले की ओर लौटती है।

यह बहुत सूक्ष्म मोड़ है।

साधारण खोज पूछती है — “मुझे क्या पाना है?”

गहरी खोज पूछती है — “जो पाना चाहता है, वह कौन है?”

साधारण ध्यान पूछता है — “मन शांत कैसे होगा?”

गहरी सजगता पूछती है — “मन की अशांति को कौन जान रहा है?”

साधारण साधना पूछती है — “मैं कब जागूँगा?”

मौन प्रश्न पूछता है — “जागरण की इच्छा किसमें उठ रही है?”

यह लौटना है।

बाहर से भीतर।

वस्तु से द्रष्टा की ओर।

अनुभव से अनुभव को जानने वाली उपस्थिति की ओर।

जैसे आँखें सारी दुनिया को देख सकती हैं, पर स्वयं को देखने के लिए दर्पण चाहिए। आत्म-जांच वही दर्पण है। वह तुम्हें कोई नई छवि नहीं देता। वह केवल यह दिखाता है कि तुम लगातार वस्तुओं में उलझे रहे, और देखने वाले को भूल गए।

इच्छा को देखना

अभी अपने भीतर बहुत धीरे से देखो।

क्या तुम्हारे भीतर कोई इच्छा है?

शायद यह इच्छा हो — “मुझे शांति चाहिए।”

या — “मुझे जागरण चाहिए।”

या — “मुझे स्थिर होना है।”

या — “मुझे यह समझ पूरी तरह चाहिए।”

अब इस इच्छा को दबाओ मत।

इसे गलत मत कहो।

इसे आध्यात्मिक या अनाध्यात्मिक मत बनाओ।

बस इसे देखो।

इच्छा उठ रही है।

वह एक हलचल है। एक खिंचाव है। एक दिशा है। जैसे भीतर कोई लहर किसी किनारे की ओर जाना चाहती है।

अब बहुत शांत होकर पूछो —

इस इच्छा को कौन जान रहा है?

यदि इच्छा दिखाई दे रही है, तो क्या तुम इच्छा हो सकते हो?

यदि तुम इच्छा ही होते, तो इच्छा को कैसे देखते?

देखने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। पर यह दूरी भौतिक दूरी नहीं है। यह जागरूकता की खुली जगह है।

इच्छा आती है।

तुम जानते हो।

इच्छा बदलती है।

तुम जानते हो।

इच्छा कुछ समय के लिए शांत होती है।

तुम जानते हो।

इस जानने में ठहरो।

यहीं पहला द्वार खुलता है।

साधक भी दिखाई देता है

अब साधक को एक वस्तु की तरह देखो।

वह कह रहा है — “मैं अभी पूर्ण नहीं हूँ।”

वह कह रहा है — “मुझे सत्य चाहिए।”

वह कह रहा है — “मुझे कोई अंतिम अनुभव मिले।”

वह कह रहा है — “मेरी साधना ठीक नहीं चल रही।”

वह कह रहा है — “शायद मैं कभी नहीं पहुँचूँगा।”

या कभी वह कहता है — “अब मैं बहुत आगे बढ़ गया हूँ।”

इन सब आवाज़ों को सुनो।

इनमें से कोई आवाज़ तुमसे छिपी नहीं है। वे आती हैं और जानी जाती हैं। कभी वे तीव्र होती हैं, कभी हल्की। कभी वे विश्वास जैसी लगती हैं, कभी डर जैसी, कभी गर्व जैसी, कभी विनम्रता जैसी।

लेकिन वे सब दिखाई दे रही हैं।

इसका अर्थ बहुत गहरा है।

साधक दिखाई दे रहा है।

तो साधक अंतिम "मैं" कैसे हो सकता है?

जिसे तुम देख सकते हो, वह तुम नहीं हो सकते।

तुम्हारा शरीर दिखाई देता है। शरीर बदलता है।

तुम्हारे विचार दिखाई देते हैं। विचार बदलते हैं।

तुम्हारी भावनाएँ दिखाई देती हैं। भावनाएँ बदलती हैं।

तुम्हारी आध्यात्मिक इच्छा भी दिखाई देती है। वह भी बदलती है।

तो जो सबको देख रहा है, वह इन बदलती हुई चीज़ों में कैसे बंद होगा?

यही आत्म-जांच का सरल प्रकाश है।

देखा हुआ देखने वाला नहीं हो सकता

इस बात को बहुत धीरे समझना।

जो देखा जाता है, वह देखने वाला नहीं हो सकता।

बादल दिखाई देता है, इसलिए बादल आकाश नहीं है।

लहर दिखाई देती है, इसलिए लहर समुद्र की संपूर्ण गहराई नहीं है।

फिल्म का दृश्य दिखाई देता है, इसलिए दृश्य स्क्रीन नहीं है।

विचार दिखाई देता है, इसलिए विचार देखने वाला नहीं है।

भावना दिखाई देती है, इसलिए भावना देखने वाला नहीं है।

साधक दिखाई देता है, इसलिए साधक भी देखने वाला नहीं है।

इसका अर्थ साधक को नकारना नहीं है। इसका अर्थ केवल उसकी सही जगह देखना है। वह एक उठती हुई प्रक्रिया है। एक मनोवैज्ञानिक गति है। एक विचारों का समूह है। एक भावनात्मक आग्रह है।

वह आता है।

कहानी बनाता है।

भविष्य बनाता है।

प्रयास करता है।

थकता है।

फिर लौटता है।

और यह सब किसी मौन उपस्थिति में जाना जाता है।

उस मौन उपस्थिति को पकड़ने की कोशिश मत करो। पकड़ोगे तो वह फिर विचार बन जाएगी। केवल पहचानो कि जो कुछ भी पकड़ा जा सकता है, वह वस्तु है। और तुम वस्तु नहीं हो।

तुम वह खुलापन हो जिसमें वस्तुएँ प्रकट होती हैं।

प्रश्न को जीवित रखना

“मैं कौन हूँ?” यह प्रश्न उत्तर पाने के लिए नहीं है।

यदि मन तुरंत कह दे — “मैं आत्मा हूँ,” तो यह केवल उत्तर है। यदि मन कह दे — “मैं चेतना हूँ,” तो यह भी शब्द है। यदि मन कह दे — “मैं साक्षी हूँ,” तो यह भी विचार हो सकता है।

शब्दों से जल्दी संतुष्ट मत हो।

प्रश्न को जीवित रखो।

जब विचार उठे — कौन जान रहा है?

जब दुख उठे — कौन जान रहा है?

जब आनंद उठे — कौन जान रहा है?

जब साधक उठे — कौन जान रहा है?

जब मन कहे, “मैं समझ गया” — इस समझ को कौन जान रहा है?

जब मन कहे, “मैं नहीं समझा” — इस न समझने को कौन जान रहा है?

इस प्रश्न को हथौड़े की तरह मत प्रयोग करो। यह कोई आक्रमण नहीं है। इसे फूल की तरह रखो। कोमल, सुगंधित, खुला हुआ।

हर बार प्रश्न तुम्हें थोड़ा पीछे नहीं, थोड़ा भीतर लाता है।

पीछे हटना नहीं, गहराई में उतरना।

विचारों की सतह से उस मौन में, जहाँ विचारों का आना-जाना दिखाई देता है।

जागरूकता खोज नहीं रही

अब सबसे शांत बात सुनो।

जागरूकता खोज नहीं रही।

खोज मन में है।

अधूरापन मन में है।

भविष्य मन में है।

मुक्ति की कल्पना मन में है।

जागरण की चाह मन में है।

जागरूकता इन सबको जान रही है।

जिस क्षण तुम यह देखते हो, उस क्षण भीतर कुछ विश्राम करता है। क्योंकि यह स्पष्ट होने लगता है कि जो खोज रहा था, वह बदलने वाला मन था। और जो मन की खोज को जान रहा था, वह पहले से शांत था।

समुद्र की सतह पर लहरें दूर किनारे की ओर भागती लग सकती हैं। पर समुद्र की गहराई कहीं नहीं जाती। सतह चलती है। गहराई स्थिर है।

मन सतह है।

जागरूकता गहराई है।

साधक सतह पर उठी एक लहर है।

वह कहती है — “मुझे समुद्र पाना है।”

गहराई मौन रहती है।

क्योंकि वह जानती है — लहर कभी समुद्र से अलग नहीं थी।

क्या यह अनुभव होना चाहिए?

यहाँ मन फिर पूछ सकता है — “क्या मुझे अभी कोई विशेष अनुभव होना चाहिए? क्या मुझे कुछ खुलता हुआ महसूस होना चाहिए? क्या यही आत्म-जांच है?”

देखो, मन फिर अनुभव खोज रहा है।

आत्म-जांच का अर्थ कोई विशेष अवस्था पैदा करना नहीं है। इसका अर्थ है अभी जो भी अवस्था है, उसे जानने वाले की ओर लौटना।

यदि शांति है, तो शांति को कौन जान रहा है?

यदि बेचैनी है, तो बेचैनी को कौन जान रहा है?

यदि कुछ नहीं हो रहा, तो "कुछ नहीं हो रहा" यह किसे पता है?

यदि तुम्हें लग रहा है कि तुम असफल हो रहे हो, तो असफलता की इस भावना को कौन जान रहा है?

इसीलिए आत्म-जांच हर अवस्था में संभव है।

इसके लिए मंदिर नहीं चाहिए।

विशेष आसन नहीं चाहिए।

विशेष अनुभव नहीं चाहिए।

केवल ईमानदार देखना चाहिए।

और यह देखना अभी संभव है।

देखने वाले को देखा नहीं जा सकता

अब एक और सूक्ष्म बात।

मन पूछता है — "ठीक है, सब दिखाई दे रहा है। अब देखने वाले को दिखाओ।"

यह मन की पुरानी आदत है। वह हर चीज़ को वस्तु बनाना चाहता है। वह जागरूकता को भी किसी अनुभव की तरह पकड़ना चाहता है। कोई प्रकाश, कोई आकृति, कोई अनुभूति, कोई स्थान।

लेकिन देखने वाला वस्तु की तरह नहीं दिखता।

क्योंकि वही देखने की रोशनी है।

दीपक अपने प्रकाश में कमरे की वस्तुओं को दिखाता है। लेकिन प्रकाश को अलग वस्तु की तरह पकड़ना संभव नहीं। फिर भी उसके बिना कुछ दिखाई नहीं देता।

जागरूकता भी ऐसी ही है।

तुम उसे किसी वस्तु की तरह नहीं देख सकते।

पर उसके बिना कोई विचार, कोई भावना, कोई अनुभव, कोई खोज जानी नहीं जा सकती।

इसलिए उसे पकड़ने की कोशिश छोड़ो।

जो पकड़ा जा सकता है, वह वह नहीं है।

जो सब पकड़ने की कोशिशों को जान रहा है, उसी में विश्राम करो।

साधक की पकड़ ढीली पड़ना

जब यह बार-बार देखा जाता है कि साधक भी देखा जा रहा है, तो साधक की पकड़ ढीली पड़ने लगती है।

वह उठता है, लेकिन अब वह पूर्ण सत्य जैसा नहीं लगता।

वह कहता है — “मुझे पहुँचना है।”

और भीतर कोई शांत रोशनी देखती है — यह विचार है।

वह कहता है — “मैं पीछे हूँ।”

रोशनी देखती है — यह तुलना है।

वह कहता है — “मुझे अंतिम अनुभव चाहिए।”

रोशनी देखती है — यह इच्छा है।

वह कहता है — “मैं समझ गया।”

रोशनी देखती है — यह भी विचार है।

इस देखने में साधक का सम्मान भी है और उसकी सीमा भी स्पष्ट है। उसे दबाया नहीं गया। उसे अपमानित नहीं किया गया। उसे केवल उसके सही स्थान पर देखा गया।

और जो सही स्थान पर देखा जाता है, वह भ्रम बनकर शासन नहीं कर पाता।

अभी लौटना

अब एक क्षण के लिए रुक जाओ।

इस वाक्य को पढ़ते हुए जो देख रहा है, उसमें लौटो।

अक्षर दिखाई दे रहे हैं।

अर्थ बन रहा है।

मन प्रतिक्रिया दे सकता है।

शरीर बैठा या खड़ा हो सकता है।

श्वास चल रही है।

शायद भीतर शांति है।

शायद कोई प्रश्न है।

सब दिखाई दे रहा है।

अब पूछो — यह सब किसमें जाना जा रहा है?

उत्तर मत बनाओ।

बस ठहरो।

यह ठहरना ही संकेत है।

यह कोई उपलब्धि नहीं।

कोई घोषणा नहीं।

कोई आध्यात्मिक घटना नहीं।

यह केवल दृष्टि का अपने स्रोत की ओर नरम लौटना है।

जैसे थकी हुई नदी समुद्र में उतरती है और अपने बहने की कहानी छोड़ देती है।

अंतिम विराम

“मैं कैसे जागूँ?” — यह प्रश्न साधक का है।

“जागने की इच्छा को कौन जान रहा है?” — यह प्रश्न जागरूकता की ओर द्वार है।

धीरे-धीरे समझ आता है कि जागरूकता खोज में शामिल नहीं थी। खोज उसमें उठ रही थी। बेचैनी उसमें उठ रही थी। साधक उसमें उठ रहा था। मुक्ति की इच्छा भी उसी में उठ रही थी।

और वह स्वयं शांत थी।

न उसे पहुँचना था।

न उसे सिद्ध होना था।

न उसे पवित्र बनना था।

न उसे जागना था।

वह वह प्रकाश है जिसमें जागने और सोने, खोजने और थकने, पाने और खोने — सबका ज्ञान होता है।

अब साधक को उठने दो।

उसे रोकना मत।

उसे देखो।

वह उठेगा, कुछ कहेगा, भविष्य बनाएगा, फिर थक जाएगा।

तुम बस उस मौन में ठहरो जो उसे जान रहा है।

यहीं आत्म-जांच अपनी सरलतम गहराई में खुलती है।

साधक पूछा करता था — “सत्य कहाँ है?”

अब मौन कहता है —

जो यह प्रश्न जान रहा है, उसी में देखो।

द्वार वहीं है।

और तुम कभी द्वार से बाहर नहीं थे।

अध्याय ९

कोई अंतिम विस्फोट नहीं, केवल सरल पहचान

✦

मन जागरण को भी अपनी कल्पना से रंग देता है।

वह सोचता है कि एक दिन कुछ बहुत बड़ा घटेगा। भीतर कोई विस्फोट होगा। सारी सीमाएँ टूट जाएँगी। आकाश खुल जाएगा। शरीर प्रकाश से भर जाएगा। विचार सदा के लिए समाप्त हो जाएँगे। आनंद हमेशा के लिए स्थिर हो जाएगा। जीवन में फिर कभी दुख, भय, क्रोध, उलझन या असुरक्षा नहीं उठेगी।

मन जागरण को एक महाघटना बना देता है।

जैसे कोई अंतिम दिन आएगा, और उसके बाद सब कुछ अलग हो जाएगा।

यह कल्पना साधक को आकर्षित करती है, क्योंकि मन असाधारण चीज़ों से प्रेम करता है। मन को नाटक पसंद है। उसे प्रमाण चाहिए। उसे लगता है कि यदि सत्य इतना महान है, तो उसका अनुभव भी बहुत महान होना चाहिए। यदि मुक्ति अंतिम है, तो उसका आगमन भी बिजली की तरह होना चाहिए। यदि जागरण जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है, तो वह साधारण कैसे हो सकता है?

लेकिन यहीं मन चूक जाता है।

सत्य महान है, पर वह नाटकीय नहीं।

सत्य गहरा है, पर वह शोर नहीं करता।

सत्य अंतिम है, पर वह किसी घटना की तरह नहीं आता।

वह इतना निकट है कि मन उसे दूर मान लेता है।

वह इतना सरल है कि जटिल मन उसे पहचान नहीं पाता।

नाटकीय जागरण की कल्पना

साधक ने बहुत कथाएँ सुनी होती हैं।

किसी को अचानक प्रकाश मिला। किसी को एक क्षण में सब समझ आ गया। कोई वृक्ष के नीचे बैठा और संसार बदल गया। कोई नदी किनारे गया और अहंकार गिर गया। किसी ने गुरु की आँखों में देखा और मौन में विलीन हो गया।

ऐसी कथाएँ प्रेरक हो सकती हैं। वे मन को दिशा दे सकती हैं। पर यदि साधक उन्हें अपनी अपेक्षा बना ले, तो वे बंधन भी बन सकती हैं।

फिर वह अपने जीवन को उन्हीं कथाओं से मापता है।

“मेरे साथ वैसा क्यों नहीं हुआ?”

“मुझे वह विस्फोट क्यों नहीं मिला?”

“मेरा अनुभव इतना साधारण क्यों है?”

“क्या मैं अभी भी दूर हूँ?”

और फिर वही पुरानी कमी लौट आती है।

साधक किसी और की कहानी को अपने सत्य का मापदंड बना लेता है। वह भूल जाता है कि सत्य कहानी में नहीं है। कहानी केवल संकेत है। वास्तविक देखना हमेशा अभी होता है, अपने ही अनुभव में।

किसी और का जागरण तुम्हारी कल्पना बन सकता है।

पर तुम्हारी पहचान केवल तुम्हारी जागरूकता में ही होगी।

मन को आतिशबाज़ी चाहिए

मन को आतिशबाज़ी चाहिए।

आकाश को नहीं।

आकाश दिन में भी आकाश है, रात में भी। उसमें चाँद हो या न हो, तारे हों या बादल, बिजली चमके या गहरी शांति हो — आकाश स्वयं को सिद्ध नहीं करता।

जागरूकता भी ऐसी ही है।

वह किसी बड़े अनुभव की प्रतीक्षा नहीं कर रही। वह अभी भी है। साधारण श्वास में। शरीर के भार में। कमरे की ध्वनि में। आँखों के सामने अक्षरों में। मन की हल्की प्रतिक्रिया में। किसी प्रश्न में। किसी मौन में।

लेकिन मन कहता है — “यह तो बहुत साधारण है।”

हाँ।

यही साधारणता मन से छूट जाती है।

मन असाधारण को खोजता है, क्योंकि साधारण में उसका महत्व कम हो जाता है। साधारण उपस्थिति में मन के पास दिखाने को कुछ नहीं रहता। कोई घोषणा नहीं। कोई उपलब्धि नहीं। कोई कथा नहीं। कोई विशेष पहचान नहीं।

सिर्फ होना।

और यही होना, जब बिना पकड़ के देखा जाता है, तो धीरे-धीरे स्पष्ट होता है — यही तो वह प्रकाश है जिसमें सभी खोजें उठीं।

जागरण सुपरह्यूमन बनना नहीं है

जागरण का अर्थ यह नहीं कि तुम मनुष्य से ऊपर कोई विशेष प्राणी बन जाओगे।

शरीर शरीर रहेगा।

भूख लगेगी।

थकान आएगी।

किसी की बात हृदय को छू सकती है।

कभी आँसू आ सकते हैं।

कभी हँसी उठ सकती है।

जीवन अपनी लहरों के साथ चलता रहेगा।

जागरण का अर्थ जीवन से बाहर खड़े हो जाना नहीं है। जागरण का अर्थ है जीवन को झूठी पहचान के बिना देखना। अब अनुभव आते हैं, पर वे तुम्हें पहले जैसी गहराई से बाँध नहीं पाते। विचार उठते हैं, पर वे पूर्ण सत्य नहीं लगते। भावनाएँ चलती हैं, पर उनके चारों ओर "मैं" की कठोर दीवार थोड़ी ढीली होती है।

यह बहुत सरल है।

और इसलिए मन इसे कम समझता है।

मन कहता है — "केवल इतना? बस देखना? बस उपस्थित होना? बस पहचान ढीली पड़ना?"

हाँ।

सत्य अक्सर "केवल इतना" ही होता है।

लेकिन यह "केवल इतना" ही मन के लिए सबसे कठिन है, क्योंकि इसमें बनने की जगह नहीं है।

साधारण उपस्थिति

एक क्षण के लिए अभी रुक जाओ।

कुछ भी विशेष मत करो।

श्वास चल रही है।

शरीर कहीं टिक रहा है।

ध्वनियाँ आ-जा रही हैं।

विचार कभी उठते हैं, कभी रुकते हैं।

अर्थ बन रहा है।

पढ़ना घट रहा है।

और यह सब जाना जा रहा है।

इस जानने के लिए तुम्हें किसी बड़ी घटना की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। यह जानना पहले से है। तुमने इसे बनाया नहीं। तुम इसे कहीं से लाए नहीं। यह तुम्हारी साधना का परिणाम बनकर अभी पैदा नहीं हुआ।

यह पहले से है।

यही साधारण उपस्थिति है।

मन इसे अनदेखा करता है, क्योंकि वह अनुभव की सामग्री में उलझा रहता है। वह देखता है — विचार क्या है? भावना कैसी है? शांति है या नहीं? समझ आई या नहीं? प्रगति हुई या नहीं?

पर वह यह नहीं देखता कि इन सबका ज्ञान है।

जो ज्ञान है, वही मौन द्वार है।

और यह द्वार कभी दूर नहीं था।

सरलता जिसे मन छोड़ देता है

सत्य बहुत सरल है।

इतना सरल कि मन उसे जटिल बनाकर ही स्वीकार करना चाहता है। उसे लंबी व्याख्या चाहिए। उसे सिद्धांत चाहिए। उसे मानचित्र चाहिए। उसे चरण चाहिए। उसे प्रमाण चाहिए। उसे किसी उच्च भाषा की मुहर चाहिए।

लेकिन क्या श्वास को समझने के लिए सिद्धांत चाहिए?

क्या सूरज की रोशनी को देखने के लिए प्रमाण चाहिए?

क्या नींद से जागने के बाद यह सिद्ध करना पड़ता है कि तुम जागे हो?

सत्य का सीधा स्पर्श बुद्धि के विरुद्ध नहीं है, लेकिन वह बुद्धि पर निर्भर भी नहीं है। बुद्धि समझ सकती है, पर पहचान उससे गहरी है। जैसे कोई व्यक्ति आम के स्वाद पर लंबा लेख पढ़ सकता है, पर स्वाद तब तक नहीं जानता जब तक आम जीभ को न छुए।

यहाँ भी ऐसा ही है।

तुम “जागरूकता” शब्द को समझ सकते हो।

पर क्या अभी जो जान रहा है, उसमें ठहर सकते हो?

तुम “अद्वैत” को समझ सकते हो।

पर क्या अभी उठते विचार को बिना उससे चिपके देख सकते हो?

तुम “मुक्ति” पर बात कर सकते हो।

पर क्या अभी यह देख सकते हो कि बंधन का विचार भी दिखाई दे रहा है?

सरलता यहीं है।

पर मन उसे छोड़कर किसी दूर प्रकाश की प्रतीक्षा करता है।

पहचान और कल्पना

कल्पना भविष्य में रहती है।

पहचान अभी में होती है।

कल्पना कहती है — “एक दिन मैं जागूँगा।”

पहचान देखती है — “जागरण की यह इच्छा अभी दिखाई दे रही है।”

कल्पना कहती है — “एक दिन मैं पूर्ण शांत हो जाऊँगा।”

पहचान देखती है — “अभी अशांति भी जानी जा रही है।”

कल्पना कहती है — “एक दिन मैं अहंकार से मुक्त होऊँगा।”

पहचान देखती है — “अभी अहंकार का विचार भी दिखाई दे रहा है।”

कल्पना हमेशा आगे ले जाती है।

पहचान वापस लाती है।

कल्पना कहानी बनाती है।

पहचान कहानी को देखती है।

कल्पना को समय चाहिए।

पहचान को केवल ईमानदार देखना चाहिए।

इसलिए साधक को कल्पना से पहचान की ओर आना होगा। वह जागरण के चित्र छोड़ता है और उस मौन को देखता है जिसमें ये चित्र उठ रहे हैं। वह भविष्य के प्रकाश का सपना छोड़कर उस वर्तमान रोशनी में लौटता है जिसके बिना सपना भी दिखाई नहीं देता।

“क्या यह बहुत साधारण नहीं?”

हाँ, यह बहुत साधारण है।

और यही इसकी सुंदरता है।

जो तुम्हारा स्वभाव है, वह असाधारण कैसे होगा? असाधारण तो वह होता है जो कभी-कभी घटता है। जो आता है और चला जाता है। जो चमत्कार की तरह दिखता है। जो तुलना का विषय बन सकता है।

पर जो हमेशा है, वह साधारण ही लगेगा।

आँखें लगातार देखती हैं, इसलिए देखने का चमत्कार भूल जाता है। श्वास निरंतर चलती है, इसलिए जीवन की कृपा साधारण लगती है। आकाश हमेशा है, इसलिए हम बादलों में अधिक रुचि लेते हैं।

जागरूकता भी इतनी निकट है कि मन उसे मूल्य नहीं देता।

वह कहता है — “इसमें क्या विशेष है?”

पर थोड़ा ठहरो।

जिसे तुम साधारण कह रहे हो, उसके बिना कोई विशेष अनुभव भी नहीं जाना जा सकता। जिस जागरूकता को मन अनदेखा कर रहा है, उसी में मन की सारी खोज, सारी कल्पना, सारी पीड़ा और सारी शांति प्रकट होती है।

साधारणता में ही रहस्य छिपा है।

कोई अंतिम प्रमाण नहीं

मन प्रमाण चाहता है।

वह चाहता है कि कोई भीतर से कहे — “अब हो गया।”

या कोई बाहर से कहे — “तुम जाग गए।”

या कोई अनुभव स्थायी रूप से बना रहे, ताकि संदेह समाप्त हो जाए।

लेकिन प्रमाण की चाह भी मन की असुरक्षा है।

सत्य को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। रस्सी को रस्सी जानने के बाद बार-बार प्रमाण नहीं चाहिए कि यह साँप नहीं है। हाँ, पुरानी आदत से भय फिर उठ सकता है। पर हर बार दीपक जलता है, और देखा जाता है — रस्सी ही है।

इसी तरह पहचान गहरी होती है।

कभी अचानक।

कभी धीरे-धीरे।

कभी एक वाक्य से।

कभी जीवन की थकान से।

कभी मौन में।

कभी आँसू में।

कभी किसी बहुत साधारण क्षण में — चाय पीते हुए, रास्ते पर चलते हुए, किसी पक्षी की आवाज़ सुनते हुए, या बस कमरे में बैठे हुए।

क्योंकि सत्य किसी विशेष क्षण का बंधक नहीं है।

हर क्षण उसमें खुल सकता है।

जागरण की नम्रता

यदि पहचान सचमुच गहरी होती है, तो वह भीतर नम्रता लाती है।

कोई घोषणा करने की जल्दी नहीं रहती।

कोई दावा नहीं उठता।

कोई विशेष बनने की भूख नहीं रहती।

जीवन चलता है। बात होती है। काम होता है। संबंध चलते हैं। शरीर अपना मार्ग चलता है। मन कभी उठता है, कभी शांत होता है। पर भीतर एक मौन समझ होती है — मैं इन सबमें प्रकट हूँ, पर इन तक सीमित नहीं।

यह समझ भारी नहीं होती।

यह बहुत हल्की होती है।

जैसे कोई व्यक्ति वर्षों तक सिर पर अनदेखा बोझ ढोता रहा हो, और एक दिन देखे कि बोझ था ही नहीं। वह नाच सकता है, पर नाचना आवश्यक नहीं। वह रो सकता है, पर रोना आवश्यक नहीं। वह मौन हो सकता है, पर मौन भी प्रदर्शन नहीं।

बस एक सहजता।

एक प्राकृतिकता।

एक साधारण खुलापन।

यही जागरण की नम्रता है।

अभी की पहचान

अब फिर यहाँ लौटो।

किसी भविष्य की प्रतीक्षा मत करो।

किसी विस्फोट की प्रतीक्षा मत करो।

किसी चमत्कार की प्रतीक्षा मत करो।

अभी जो है, उसे देखो।

शरीर है।

श्वास है।

विचार है या विचार का अभाव है।

अनुभव है।

जागरूकता है।

क्या जागरूकता को आने की प्रतीक्षा है?

क्या वह कह रही है — “मैं बाद में पूर्ण होऊँगी?”

क्या वह कह रही है — “मुझे कोई बड़ी घटना चाहिए?”

नहीं।

ये बातें मन कहता है।

जागरूकता केवल जानती है।

शांत।

खुली।

अभी।

यही पहचान का बीज है।

इसे बड़ा मत बनाओ। इसे छोटा भी मत बनाओ। इसे पकड़ो मत। इसे सिद्ध मत करो। बस इसमें थोड़ा विश्राम करो।

अंतिम विराम

जागरण कोई अंतिम विस्फोट नहीं भी हो सकता।

हो सकता है वह बहुत शांत पहचान हो।

इतनी शांत कि मन पहले उसे महत्व न दे।

इतनी साधारण कि तुम उसे रोज़ छूते रहे और नाम न दे पाए।

इतनी निकट कि खोज उसे दूर करती रही।

मन आतिशबाज़ी खोजता रहा।

सत्य दीपक की लौ की तरह चुपचाप जलता रहा।

मन भविष्य का सूर्योदय चाहता रहा।

जागरूकता अभी की रोशनी बनी रही।

अब कल्पना को धीरे से रख दो।

किसी महान घटना की प्रतीक्षा थोड़ी देर के लिए छोड़ दो।

बस देखो —

जो प्रतीक्षा कर रहा है, वह भी दिखाई दे रहा है।

जो चमत्कार चाहता है, वह भी दिखाई दे रहा है।

जो कह रहा है “अभी नहीं”, वह भी दिखाई दे रहा है।

और यह देखना पहले से है।

यहीं सरल पहचान है।

न कोई शोर।

न कोई दावा।

न कोई अंतिम प्रमाण।

केवल यह शांत, खुला, साधारण होना।

जिसे मन ने कभी पर्याप्त नहीं माना।

और जो हमेशा पर्याप्त था।

अध्याय १०

बनने के बोझ के बिना जीना

✦

जब साधक को देखा जाने लगता है, तो जीवन रुकता नहीं।

सूरज फिर भी उगता है।

शरीर फिर भी उठता है।

भोजन बनता है।

काम सामने आता है।

लोग बोलते हैं।

संबंध चलते हैं।

बिल भरने होते हैं।

सड़क पर चलना होता है।

किसी की बात सुननी होती है।

किसी दिन शरीर हल्का होता है, किसी दिन भारी। किसी दिन मन शांत होता है, किसी दिन उसमें पुरानी लहरें उठती हैं।

बाहर से जीवन लगभग वैसा ही रहता है।

पर भीतर एक सूक्ष्म परिवर्तन होता है।

अब हर क्षण को प्रमाण नहीं बनाना पड़ता।

अब हर अनुभव को मापना नहीं पड़ता।

अब यह देखना नहीं पड़ता कि “मैं आगे बढ़ रहा हूँ या पीछे जा रहा हूँ।”

अब जीवन साधक की परीक्षा नहीं रहता।

जीवन जीवन की तरह खुलने लगता है।

और यह बहुत बड़ा विश्राम है।

आध्यात्मिक दबाव का अंत

साधक हर चीज़ को आध्यात्मिक बना सकता है। यह बात सुनने में अच्छी लगती है, पर इसके भीतर कई बार एक छिपा हुआ दबाव होता है।

चलना भी जागरूक होना चाहिए।

खाना भी पूर्ण सजगता से होना चाहिए।

बोलना भी बहुत शांत होना चाहिए।

क्रोध नहीं आना चाहिए।

दुख नहीं उठना चाहिए।

शरीर हमेशा स्थिर रहना चाहिए।

मन हमेशा साफ़ रहना चाहिए।

संबंधों में कोई प्रतिक्रिया नहीं होनी चाहिए।

यदि कोई साधक ऐसा मापदंड बना ले, तो उसकी साधना प्रेम नहीं, तनाव बन जाती है। वह हर क्षण स्वयं को देखता नहीं, स्वयं को जाँचता रहता है। वह साक्षी नहीं होता, अपने ही भीतर निरीक्षक बन जाता है — कठोर, सूखा, हमेशा परिणाम खोजता हुआ।

यह जागरूकता नहीं है।

यह मन का नया अनुशासन हो सकता है।

सच्ची जागरूकता में कोमलता होती है। उसमें देखने की खुली जगह होती है। वहाँ गलती भी देखी जाती है, पर स्वयं पर आक्रमण नहीं होता। वहाँ क्रोध भी देखा जाता है, पर तुरंत आध्यात्मिक असफलता की मुहर नहीं लगती। वहाँ दुख भी आता है, पर उसके कारण सत्य खो नहीं जाता।

जब बनने का बोझ गिरने लगता है, तब साधना दबाव नहीं रहती।

वह सरल स्मरण बन जाती है।

जैसे कोई व्यक्ति घर लौटने का रास्ता जानता हो। भटक भी जाए, तो भय नहीं। उसे पता है कि लौटना संभव है।

अब जीवन सीढ़ी नहीं है

पहले साधक जीवन को सीढ़ी बना देता था।

यह अनुभव मुझे आगे ले जाएगा।

यह ध्यान मुझे गहरा करेगा।

यह दुख मेरी साधना का परीक्षण है।

यह संबंध मुझे मुक्त करेगा।

यह गुरु मुझे पार कर देगा।

यह पुस्तक मुझे अंतिम समझ दे देगी।

हर चीज़ किसी आने वाली स्थिति के लिए साधन बन जाती थी।

लेकिन जब साधक की पकड़ ढीली पड़ती है, तो जीवन साधन नहीं रहता। वह स्वयं में प्रकट होने लगता है। चाय केवल चाय हो सकती है। चलना केवल चलना। किसी मित्र की बात सुनना केवल सुनना। वर्षा केवल वर्षा। मौन केवल मौन।

इसका अर्थ यह नहीं कि इन सबमें जागरूकता नहीं है।

बल्कि अब जागरूकता अधिक सहज है, क्योंकि मन हर चीज़ से लाभ उठाने की कोशिश नहीं कर रहा।

जब फूल को प्रतीक बनाने की जल्दी नहीं होती, तब पहली बार फूल सचमुच दिखाई देता है।

जब पक्षी की आवाज़ को ध्यान की तकनीक में बदलना बंद होता है, तब पहली बार वह आवाज़ अपने आप में पवित्र लगती है।

जब श्वास को साधना का उपकरण बनाकर खींचा नहीं जाता, तब उसकी सहज गति में जीवन की करुणा दिखाई देती है।

जीवन तब सीढ़ी नहीं रहता।

जीवन स्वयं द्वार बन जाता है।

स्वाभाविक कर्म

जब बनने की भूख कम होती है, तब कर्म अधिक स्वाभाविक होने लगता है।

काम किया जाता है क्योंकि काम सामने है।

भोजन बनाया जाता है क्योंकि शरीर को भोजन चाहिए।

किसी की सहायता की जाती है क्योंकि उस क्षण सहायता स्वाभाविक है।

किसी को स्पष्ट “नहीं” कहा जाता है क्योंकि सत्य की आवश्यकता है।

किसी से क्षमा माँगी जाती है क्योंकि भीतर ईमानदारी है, न कि आध्यात्मिक छवि बचानी है।

स्वाभाविक कर्म में भारी कर्ता नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं कि जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है। जिम्मेदारी रहती है, पर उसके चारों ओर “मैं कितना आध्यात्मिक हूँ” या “मुझे कैसा दिखना चाहिए” का बोझ कम हो जाता है।

पहले कर्म पहचान बनाते थे।

अब कर्म जीवन की धारा में उठते हैं।

जैसे वृक्ष फल देता है। वह अपनी आध्यात्मिकता सिद्ध नहीं कर रहा। जैसे नदी बहती है। वह किसी मंज़िल पर गर्व नहीं कर रही। जैसे दीपक प्रकाश देता है। वह घोषणा नहीं करता कि मैं अंधकार मिटा रहा हूँ।

साधारण कर्म भी ऐसा ही हो सकता है।

जब भीतर बनने की बेचैनी कम हो, तब कर्म में एक साफ़पन आता है।

प्रेम बिना परियोजना

साधक प्रेम को भी साधना बना सकता है। वह कहता है — “मुझे बिना आसक्ति प्रेम करना है। मुझे पूर्ण करुणामय होना है। मुझे कभी प्रतिक्रिया नहीं करनी है।”

यह सुनने में अच्छा है, पर यदि यह भी बनने की इच्छा से भरा है, तो प्रेम फिर से परियोजना बन गया।

सच्चा प्रेम तब सहज होता है जब सामने वाले को बदलने की जल्दी थोड़ी कम हो। जब स्वयं को प्रेमी सिद्ध करने की आवश्यकता कम हो। जब यह देखने की क्षमता हो कि संबंधों में भी मन अपनी पकड़, भय, अपेक्षा और असुरक्षा लाएगा — और यह सब भी जागरूकता में देखा जा सकता है।

प्रेम का अर्थ यह नहीं कि तुम कभी दुखी नहीं होगे।

प्रेम का अर्थ यह नहीं कि सीमा नहीं बनानी।

प्रेम का अर्थ यह नहीं कि हर संबंध को बचाना ही है।

प्रेम का अर्थ है — जहाँ संभव हो, वहाँ जागरूकता से मिलना। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ स्पष्टता से अलग होना। जहाँ चोट हो, वहाँ ईमानदारी से देखना। जहाँ निकटता हो, वहाँ पकड़ को पहचानना।

बिना बनने के बोझ के प्रेम अधिक मानवीय, अधिक सत्य और अधिक खुला हो जाता है।

वह कोई आध्यात्मिक प्रदर्शन नहीं रहता।

वह जीवित संवाद बनता है।

सामान्य जीवन में पवित्रता

कई साधक पवित्रता को विशेष स्थानों में खोजते हैं — आश्रम में, पर्वतों में, मंदिरों में, ध्यान-कक्ष में, गुरु की उपस्थिति में। ये स्थान सहायक हो सकते हैं। इनमें कृपा हो सकती है। पर यदि पवित्रता केवल वहाँ है, तो जागरूकता अभी बँधी हुई समझी जा रही है।

सच में पवित्रता उस देखने में है जो अभी उपलब्ध है।

बर्तन धोते हुए भी वही जागरूकता है।

किसी बच्चे की बात सुनते हुए भी वही जागरूकता है।

बाजार की भीड़ में भी वही जागरूकता है।

पैसे गिनते हुए भी वही जागरूकता है।

थके हुए शरीर को बिस्तर पर रखते हुए भी वही जागरूकता है।

फोन की घंटी बजती है — सुनना होता है।

कोई दुख बताता है — सुनना होता है।

किसी बिल की चिंता उठती है — देखना होता है।

किसी पुराने डर की लहर आती है — जगह देनी होती है।

यही सामान्य जीवन है।

और इसी सामान्य जीवन में यदि तुम जागरूक हो, तो यही साधना है। यहाँ कोई विशेष मुद्रा नहीं। कोई विशेष भाषा नहीं। कोई घोषणा नहीं। केवल उपस्थित होना।

साधारण क्षण ही गहरे हो जाते हैं जब उन्हें भविष्य की सीढ़ी नहीं बनाया जाता।

शांति का नया अर्थ

पहले साधक शांति को एक अवस्था समझता था — विचारों का अभाव, भावनाओं का शांत होना, शरीर का स्थिर होना, जीवन का अनुकूल होना।

अब धीरे-धीरे शांति का अर्थ बदलता है।

शांति का अर्थ यह नहीं कि लहरें नहीं उठेंगी।

शांति का अर्थ है — लहरें उठें, फिर भी समुद्र अपनी गहराई को न भूले।

विचार आएँगे।

भावनाएँ आएँगी।

जीवन में परिस्थितियाँ बदलेंगी।

कभी प्रशंसा मिलेगी, कभी आलोचना।

कभी स्पष्टता होगी, कभी धुंध।

पर यदि पहचान हर लहर के साथ पूरी तरह नहीं बहती, तो भीतर एक गहराई बची रहती है। वही वास्तविक शांति है।

यह शांति भी किसी वस्तु की तरह पकड़ने योग्य नहीं है। यह उस क्षण प्रकट होती है जब पकड़ ढीली होती है। जब मन कहता है — “इस क्षण को मेरे अनुसार होना चाहिए” — और फिर

यह आग्रह देखा जाता है। देखने में आग्रह थोड़ा नरम होता है। उसी नरमी में शांति की सुगंध आती है।

अब असफलता भी हल्की है

जब बनने का बोझ होता है, तो हर गलती भारी लगती है।

एक दिन क्रोध आया — "मैं अभी भी वैसा ही हूँ।"

एक दिन ईर्ष्या उठी — "मेरी साधना बेकार है।"

एक दिन भय ने पकड़ लिया — "मैं कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगा।"

लेकिन जब साधक को देखा जा चुका है, तो ये सब भी देखे जाने लगते हैं। क्रोध आए तो वह शिक्षक बन सकता है। ईर्ष्या उठे तो वह भीतर की कमी का दर्पण बन सकती है। भय आए तो वह उस स्थान को दिखा सकता है जहाँ अभी भी पकड़ है।

अब जीवन को आध्यात्मिक रिपोर्ट-कार्ड नहीं बनाना।

हर दिन अंक नहीं मिलते।

हर भावना परीक्षा नहीं है।

हर चूक पतन नहीं है।

यह समझ बहुत करुणा लाती है।

जो देख रहा है, वह गलती से दूषित नहीं होता। गलती व्यवहार में सुधार माँग सकती है, क्षमा माँग सकती है, सीख माँग सकती है। पर गलती तुम्हारी मूल जागरूकता को छोटा नहीं कर सकती।

यह जानना मनुष्य को ढीला नहीं, ईमानदार बनाता है।

अंत नहीं, शुरुआत

जब खोज शांत होती है, तो ऐसा नहीं कि जीवन समाप्त हो जाता है।

वास्तव में पहली बार जीवन शुरू होता है।

क्योंकि अब जीवन को किसी भविष्य की मुक्ति के लिए स्थगित नहीं किया जाता। अब यह क्षण केवल मार्ग नहीं है। यह क्षण स्वयं जीवन है। यह श्वास केवल अभ्यास नहीं है। यह जीवित होना है। यह संबंध केवल कर्म का बंधन नहीं है। यह देखने की भूमि है। यह शरीर केवल बाधा नहीं है। यह संवेदनशीलता का माध्यम है।

साधक जीवन को छोड़कर सत्य खोज रहा था।

अब सत्य के प्रकाश में जीवन को देखा जाता है।

यह बहुत बड़ा परिवर्तन है।

पहले मन कहता था — “जब मैं जागूँगा, तब जीऊँगा।”

अब मौन कहता है — “जीवन अभी है।”

पहले मन कहता था — “जब मैं पूर्ण हो जाऊँगा, तब प्रेम करूँगा।”

अब जागरूकता देखती है — “प्रेम इसी अपूर्ण दिखते जीवन में फूल सकता है।”

पहले मन कहता था — “जब दुख समाप्त होगा, तब शांति मिलेगी।”

अब दिखता है — “दुख को जानने वाली जागरूकता अभी भी शांत है।”

यहीं खोज जीवन में विलीन होती है।

बनने से होने तक

बनना मन की गति है।

होना जागरूकता की सुगंध है।

बनना कहता है — “मैं अभी नहीं हूँ।”

होना कहता है — “मैं हूँ।”

बनना भविष्य बनाता है।

होना वर्तमान में विश्राम करता है।

बनना तुलना करता है।

होना खुला रहता है।

बनना प्रमाण चाहता है।

होना मौन है।

जब बनने का बोझ ढीला पड़ता है, तो “मैं हूँ” की सरलता प्रकट होती है। यह कोई नारा नहीं। यह कोई विचार नहीं। यह तुम्हारे अपने अस्तित्व का सबसे सीधा स्पर्श है।

तुम हो।

इससे पहले कि तुम कुछ बनो, तुम हो।

इससे पहले कि तुम सफल या असफल हो, तुम हो।

इससे पहले कि तुम साधक या ज्ञानी बनो, तुम हो।

इससे पहले कि मन कहे “मैं पहुँचा” या “मैं नहीं पहुँचा,” तुम हो।

इस होने को पहचानना ही खोज के बोझ से विश्राम है।

अंतिम जीवन-स्पर्श

अब जीवन को थोड़ा हल्का रहने दो।

यदि चल रहे हो, तो चलना होने दो।

यदि खा रहे हो, तो खाना होने दो।

यदि काम कर रहे हो, तो काम होने दो।

यदि किसी से बात कर रहे हो, तो सुनना और बोलना होने दो।

हर क्षण पर आध्यात्मिकता का भारी आवरण मत डालो।

सत्य को भारी मत बनाओ।

जागरूकता बहुत सरल है।

वह तुम्हारे साधारण जीवन से अलग नहीं है। वह तुम्हारे जीवन की हर लहर में मौन आधार की तरह है। उसे पाने के लिए जीवन से बाहर नहीं जाना। केवल उस पकड़ को देखना है जो जीवन को भविष्य की उपलब्धि में बदल देती है।

जब पकड़ ढीली होती है, तो जीवन अपने आप पवित्र दिखाई देता है।

बर्तन भी चमकते हैं।

धूल भी दिखाई देती है।

थकान भी स्थान पाती है।

हँसी भी मुक्त होती है।

आँसू भी अपवित्र नहीं रहते।

सब उसी एक खुले आकाश में आता-जाता है।

और तब समझ आता है —

खोज का अंत जीवन से दूर जाना नहीं था।

खोज का अंत जीवन में पहली बार सचमुच उतरना था।

समापन-संदेश

अंतिम मौन-स्पर्श

✦

प्रिय साधक,

यह पुस्तक तुम्हें कोई नई पहचान देने के लिए नहीं लिखी गई।

यह तुम्हें “ज्ञानी” बनाने के लिए भी नहीं लिखी गई।

यह तुम्हें किसी विशेष आध्यात्मिक अवस्था में पहुँचाने का वचन नहीं देती।

इस पुस्तक का पूरा संकेत केवल इतना है — जिसको तुम खोज रहे हो, उससे तुम अलग नहीं हो।

तुम्हें स्वयं बनना नहीं है।

स्वयं बनने की सारी कोशिश उसी भ्रम से उठती है कि तुम अभी स्वयं नहीं हो। मन कहता है — “मुझे पूर्ण होना है।” लेकिन यह वाक्य भी तुम्हारी जागरूकता में ही उठता है। मन कहता है — “मुझे मुक्त होना है।” पर यह चाह भी उसी खुली उपस्थिति में जानी जाती है जो कभी बंधी हुई नहीं थी।

देखो, कितना सूक्ष्म खेल है।

तुम उस प्रकाश में खड़े होकर प्रकाश खोज रहे थे।

तुम उसी आकाश में बादल की तरह भटक रहे थे और आकाश बनने की साधना कर रहे थे।

तुम समुद्र की ही लहर होकर समुद्र की मंज़िल पूछ रहे थे।

इसमें कोई दोष नहीं। यही मन का स्वभाव है। वह भूलता है, फिर खोजता है। वह खोने की कल्पना करता है, फिर पाने की यात्रा बनाता है। वह अधूरापन मानता है, फिर पूर्णता का सपना देखता है। वह दुख से बचता है, फिर मुक्ति को आश्रय बनाता है।

लेकिन अब तुमने धीरे-धीरे उसे देखा है।

तुमने देखा कि साधक कोई स्थायी सत्ता नहीं। वह विचारों की धारा है। स्मृतियों की गाँठ है। इच्छाओं का खिंचाव है। डर की छाया है। भविष्य की कल्पना है। कभी वह विनम्र बनता है, कभी गर्व करता है, कभी रोता है, कभी आनंदित होता है, कभी कहता है — "मैं बहुत दूर हूँ," कभी कहता है — "मैंने पा लिया।"

पर हर बार वह देखा जा सकता है।

और जो देखा जा सकता है, वह अंतिम तुम नहीं हो।

यही इस पुस्तक की सबसे शांत अग्नि है।

साधक को मिटाने की आवश्यकता नहीं।

उसे केवल देखना है।

जैसे सूरज धुंध से लड़ता नहीं। वह केवल चमकता है, और धुंध अपने समय पर हल्की पड़ने लगती है। जैसे आकाश बादलों को धक्का नहीं देता। वह खुला रहता है, और बादल आते-जाते रहते हैं। जैसे समुद्र लहरों से युद्ध नहीं करता। वह उन्हें उठने देता है, गिरने देता है, और अपनी गहराई में अडोल रहता है।

तुम्हारी जागरूकता भी ऐसी ही है।

अब यदि खोज उठे, तो उसे भी देखो।

यदि इच्छा उठे — "मुझे जागना है" — उसे भी देखो।

यदि निराशा उठे — "मैं अभी भी वहीं हूँ" — उसे भी देखो।

यदि आनंद उठे — “अब मैं पहुँचा” — उसे भी देखो।

यदि शांति आए, तो उसे प्रणाम करो।

यदि अशांति आए, तो उसे भी जगह दो।

किसी भी अवस्था को अपना अंतिम घर मत बनाओ।

तुम अवस्था नहीं हो।

तुम वह घर हो जिसमें अवस्थाएँ अतिथि की तरह आती-जाती हैं।

मुक्ति कोई भविष्य का पुरस्कार नहीं है। यह वर्तमान की उस स्पष्टता में खुलती है जहाँ मन की पकड़ देखी जाती है। जागरण कोई विस्फोट होना आवश्यक नहीं। वह बहुत साधारण पहचान भी हो सकती है — इतनी साधारण कि मन उसे पहले महत्व न दे।

यही श्वास।

यही होना।

यही जानना।

यही मौन।

तुम्हें इसे प्राप्त नहीं करना।

तुम्हें केवल उस विचार को देखना है जो कहता है कि यह अनुपस्थित है।

जब साधक देखा जाता है, खोज नरम पड़ती है।

जब खोज नरम पड़ती है, मौन अपने आप स्पष्ट होता है।

जब मौन स्पष्ट होता है, जीवन किसी मंज़िल की प्रतीक्षा नहीं रहता।

तब खाना भी जीवन है।

चलना भी जीवन है।

रोना भी जीवन है।

प्रेम भी जीवन है।

मौन भी जीवन है।

और हर अनुभव के पीछे वही शांत प्रकाश है, जो कभी आया नहीं, इसलिए कभी जाएगा भी नहीं।

प्रिय साधक, अब थोड़ा विश्राम करो।

बहुत दौड़ चुके।

बहुत खोज चुके।

बहुत तुलना कर चुके।

बहुत भविष्य बना चुके।

अब इस क्षण में बैठो।

जैसे थका हुआ पक्षी अपने घोंसले में लौटता है।

जैसे लहर अपनी थकान में समुद्र को पहचानती है।

जैसे आँखें बाहर बहुत देख लेने के बाद धीरे से स्वयं देखने की रोशनी में विश्राम करती हैं।

तुम्हें स्वयं तक पहुँचना नहीं है।

तुम स्वयं से कभी दूर नहीं गए।

केवल विचारों की धुंध उठी थी।

केवल खोज की कहानी बनी थी।

केवल “मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा” की रेखा खिंची थी।

अब उस रेखा को देखो।

और देखो — वह रेखा भी जागरूकता में ही बनी थी।

तुम रेखा नहीं हो।

तुम वह खुला आकाश हो जिसमें रेखाएँ आती-जाती हैं।

यही निर्वाण सूत्र का पहला स्पर्श है।

खोजो मत।

भागो मत।

घोषणा मत करो।

बस देखो।

और देखने में विश्राम करो।

यहीं द्वार है।

यहीं घर है।

यहीं तुम हो।

— आदिसत्व